सचित्र

महात्मा बुद्ध ।

लेखकः—
बाबू सुखसम्पत्ति राय भण्डारी ।

प्रकाशकः—
हरिदास एण्ड कम्पनी ।

२०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा मुद्रित ।
अकतूबर सन् १९२० ई० ।

द्वितीय बार १०००

मूल्य १।)

॥ श्रीः ॥

अर्पण पत्रिका

मध्यभारत के प्रख्यात डाक्टर

राय साहब सरयूप्रसाद जी

इन्दौर की सेवा में ।



प नित्यप्रति सहस्रों व्यथित और रोग-पीड़ित मनुष्यों को शान्ति और आश्वासन देते रहते हैं। आपकी सुचिकित्सा से अनेक असाध्य रोगी आरोग्य लाभ कर रहे हैं। दूर दूर के प्रदेशोंसे आकर अनेक मरणोन्मुख रोगी आपकी अद्भुत और आश्चर्य्यकारक चिकित्सा से जीवन-शक्तिके आनन्दमय समुद्रमें सुख-स्नान करते हैं।

बड़े बड़े अङ्गरेज़ डाक्टर आपकी चिकित्सा-प्रणाली पर मुग्ध हैं। आपके प्रेममय स्वभाव का प्रभाव तड़फते हुए रोगियोंके हृदयमें अपूर्व शान्ति उत्पन्न करता है। आपकी मानसिक प्रभा कुछ ऐसी दिव्य है कि, आपके आश्वासनमात्र ही से रोगी आरोग्यता की झलक देखने लगता है। इस पुस्तकके लेखकने भी आपकी चिकित्सा द्वारा एक कठिन रोग से छुटकारा पाया है। आप जैसे सुचतुर और प्रख्यात चिकित्सक हैं, वैसे ही आपका हृदय दया, सहानुभूति और प्रेम से परिपूर्ण है। इसके सिवा आप हिन्दी भाषा की उन्नति करनेमें तन, मन, धनसे अग्रसर हुए हैं। आपके इन्हीं सब सद्गुणोंसे प्रभावित होकर, लेखक अपनी यह लघु कृति "बुद्ध चरित्र" सविनय आपकी सेवामें अर्पण करता है। आशा है, आप अपनी स्वाभाविक उदारता से इसे स्वीकार करेंगे।

सुखसम्पत्तिराय भण्डारी।



भूमिका



महात्माओंका—दिव्य पुरुषोंका—शक्तिशाली मनुष्यों का जीवन-चरित्र पढ़ने से हम-लोगोंकी आत्माएँ ऊँची उठती हैं—हम में दिव्यता प्रकाशित होने लगती है—एक प्रकार की अलौकिक शक्ति का सञ्चार हमारी आत्मा में होने लगता है। महात्माओं की जीवनी पढ़, हम इस बातको जान सकते हैं कि, किस पथपर अग्रसर होनेसे हमारी आत्मामें सद्गुणों का प्रादुर्भाव हो सकता है; किस तरह हम अपनी आत्माको पवित्र और दिव्य बना सकते हैं; किस तरह हम अपने तईं लोगोंके लिये आदर्श स्वरूप बना सकते हैं। आज हम जिस महात्मा का—अलौकिक पुरुष का—जीवन-चरित्र अपने सहृदय और जिज्ञासु पाठकोंके सामने रखते हैं, उसके पढ़ने से पता चलेगा कि मनुष्य अपनी

आत्मा को कैसे ऊँची उठा सकता है ; सुख-शान्ति, आनन्द-ऐश्वर्य्य से उसे कैसे भरपूर कर सकता है और किस तरह दुनिया को—सारे संसारको—वह अपना बना लेता है। उसके एक शब्दमात्रसे संसार की सभ्यता पर कितना भारी प्रभाव पड़ जाता है। उसके दर्शनमात्रसे कितने व्यथित हृदयों को अपूर्व सुख, अपूर्व शान्ति, अपूर्व सन्तोषका सुखानुभव होने लगता है। उसके पढ़ने से मालूम होगा कि, व्यथित हृदयों को शान्ति देने में, असहायों को सहायता देनेमें, गिरते हुए जनोंकी बाहु पकड़ने में, घबराये हुए लोगों को आश्वासन देनेमें कितना सुख, कितना आनन्द, कितना सन्तोष भरा हुआ है। उसके पढ़नेसे मालूम होगा कि, संसार कितने उत्साह और लगन के साथ ऐसे महात्माओं का अनुकरण करने लगता है।

यह चरित्र—दिव्य चरित्र भगवान् बुद्धदेव का है। यह वही बुद्धदेव हैं, जो अढ़ाई हज़ार वर्षों के पूर्व इसी पुण्यभूमि भारतमें—आर्यखण्डमें—अवतीर्ण हुए थे। अन्धकार में ठोकरें खाती हुई दुनिया को स्वर्गीय प्रकाश बतानेके लिये—दुःखी जगत् को सच्चे सुखका मार्ग बताने के लिये—दीन पशु-पक्षियोंकी रक्षा के लिये—अहिंसा की, दया की विजय-दुंदुभी बजाने के लिये, त्यागका सच्चा आदर्श बतानेके लिये, उस महान् आत्मा ने इस पुण्यभूमि में अवतार लिया था। उस महात्माने संसार को वह पवित्र सन्देशा सुनाया, जो दुनिया में आज तक

किसीने नहीं सुनाया है। उसने दया के महान तत्त्व को—अहिंसाके ऊँचे आदर्श को—संसार के सामने रक्खा। संसार को उसने यह बात समझा दी कि, स्वार्थ के लिये—नीच वासनाओं को तृप्त करनेके लिये दूसरों पर अत्याचार करना, उन्हें सताना, उनका वध करना महानीचता और घोरातिघोर पाप है। धर्म के नाम से यज्ञमें पशुओं को बलि देना और उससे सुख की आशा करना, वैसा ही है जैसा बबूल का पेड़ रोप कर आम के मीठे फलों की आशा रखना। उन्होंने संसारको आत्मा के इस महान और शाश्वत तत्त्व को समझा दिया कि, जैसे विचार हम रखते हैं उन्हींके सदृश विचारों का प्रवाह संसार की ओरसे हमारी ओर आता है।

महात्मा बुद्धदेवके जीवन-चरित्र से अनेक शिक्षाएँ मिल सकती हैं। इस छोटी सी भूमिका में उन सब बातोंका उल्लेख करना असम्भव है। पाठक! इस संक्षिप्त जीवनी को साद्यन्त पढ़ जाइये। आपके हृदय में इस महात्मा की जीवनीकी घटनाओं का कुछ न कुछ दिव्य प्रकाश अवश्य गिरेगा।

लेखक महात्मा बुद्ध पर अनन्य भक्ति रखता है। उसका विश्वास है कि, ऐसा महात्मा अब तक संसारमें दूसरा नहीं हुआ। यह चरित्र उसके हृदय से लिखा गया है। महात्मा बुद्धसम्बन्धी उसके हार्दिक उद्गारों का यह संग्रह है। अवश्य ही लेखक को इस चरित्रके लिखने में बहुत से ग्रन्थों से सहायता लेनी पड़ी है। गुजरातीके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत मणीलाल

नथुभाई दोशी की दिव्य लेखनी से लिखे हुए गुजराती जीवन-चरित्र से लेखकको अत्यन्त सहायता मिली है। लेखक इस लिये उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता है। मराठीके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत वासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए० ने "बौद्धपर्व"* नामक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक मराठी भाषा में लिखी है। बुद्ध चरित्र के साथ-साथ बौद्ध इतिहास का भी अन्वेषणपूर्वक उन्होंने विवेचन किया है। इच्छा थी कि, आपटे महोदय के बीस वर्ष के परिश्रम के मधुर फल का आस्वादन हिन्दी-प्रेमियोंको भी चखाऊँ, पर ग्रन्थके बहुत बढ़ जाने के भय से ऐसा नहीं कर सका। यदि सहृदय पाठक चाहेंगे, तो "बौद्ध इतिहास" नाम की पुस्तक अलग ही प्रकाशित करने का विचार किया जायगा। इस चरित्रके लिखनेमें उक्त पुस्तक से भी कुछ न कुछ सहायता मिली है,

---

* आपटे महोदय के "बौद्धपर्व्व" का हिन्दी अनुवाद होकर हमारे पास आगया है। अनुवादक हैं, मराठी और हिन्दी के नामी विद्वान् बाबू प्यारेलालजी गुप्त, बिलासपुर, सी० पी०।

"बौद्ध पर्व्व" भारतीय भाषाओं में अनुपम रत्न है; इसलिये हम भी इसे खूब सजधज से छापने का विचार कर रहे हैं। इसके लिये बड़ी खोज और खर्च से चित्र मँगवा मँगवाकर बनवाये जारहे हैं। कुछ चित्र बन भी गये हैं, वे ही इस महात्मा बुद्ध में लगवा दिये गये हैं। आशा है, थोड़े ही दिनों में "बौद्ध पर्व्व" प्रकाशित हो जायगा। हमारा विश्वास है, भारत की किसी भी भाषामें इस विषय का इससे उत्तम ग्रन्थ नहीं होगा।

—प्रकाशक।

अतएव मैं उसके लेखक आपटे महोदय को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। अङ्गरेज़ी ग्रन्थोंके सिवा सचित्र "प्रभा" में प्रकाशित "बुद्धदेव" नामक लेखसे भी सहायता मिली है, अतएव उसके लेखक महोदयके प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित किये देता हूँ।

कलकत्तेके नामी पुस्तक-प्रकाशक, हरिदास एण्ड कम्पनी और नरसिंह प्रेसके स्वामी, श्रीयुत बाबू हरिदासजी को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे प्रोत्साहन देकर इस पुस्तक को प्रकाशित किया है।

भानपुर
इन्दौर-स्टेट
५-६-१९१५

विनीत—
सुखसम्पत्तिराय भण्डारी।



बुद्धका जन्म।

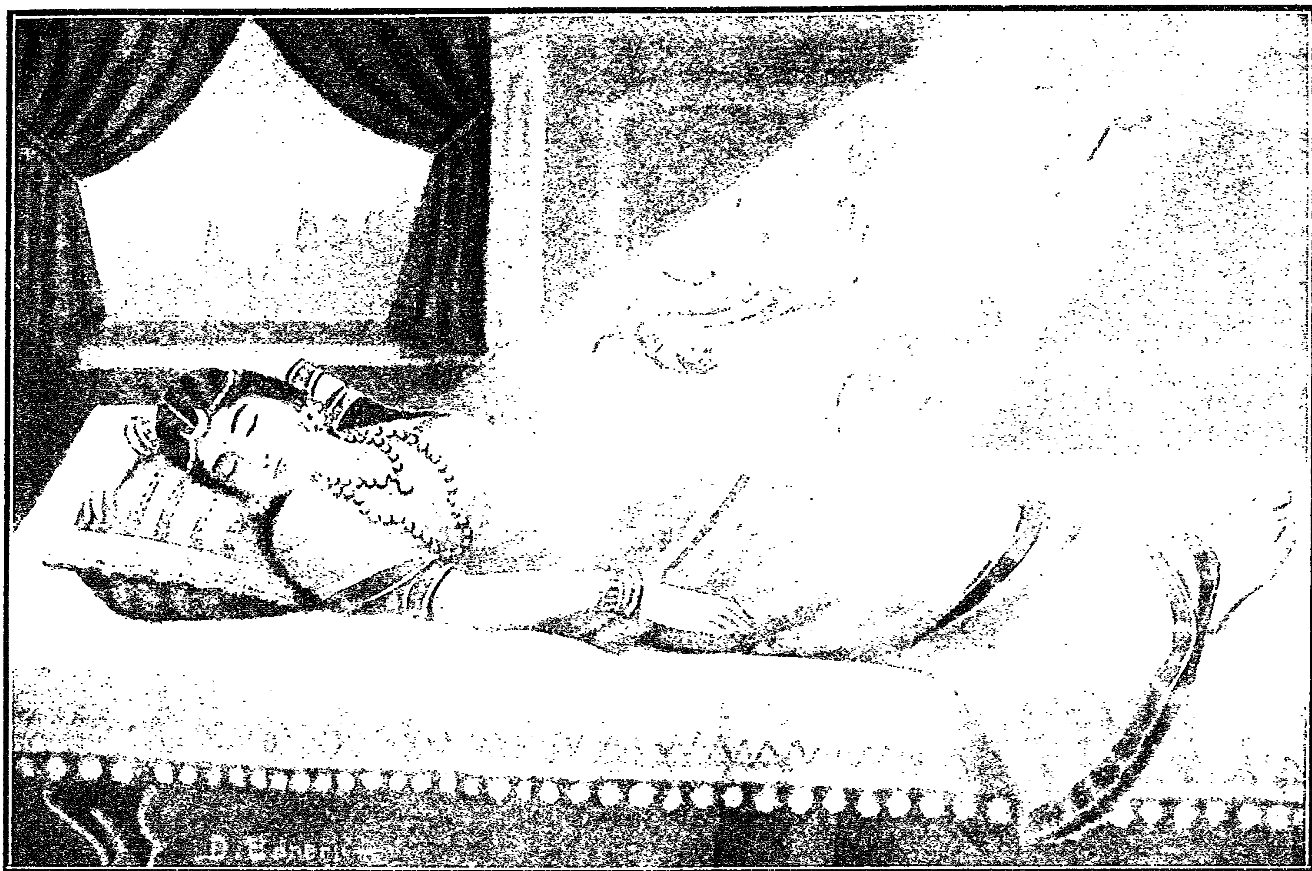


स परम प्रसिद्ध वंश को सत्यव्रतधारी हरिश्चन्द्रने सुशोभित किया था, जिसमें महाराज रामचन्द्र से महापुरुषोंने जन्म लिया था, उसी उज्ज्वल सूर्य्य-वंश की शाखा शाक्यवंश में महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। ये शाक्य लोग कृषि से अपना निर्वाह करते थे। नेपालके दक्षिण में, काशी से १३० मील की दूरी पर, कपिलवस्तु नामक नगर बसा हुआ था। राजा शुद्धोदनके समयमें, यह नगर उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान् था। लोग सब प्रकार से खुश थे। प्रजा धनधान्य पूर्ण थी। राज-महल अटूट सामग्रीसे भरपूर थे। योद्धा लोग देशाभिमान का दम भरते थे। राजा शुद्धोदन परम पवित्र और धार्मिक पुरुष थे। यही कारण है कि, बाह्य संयोग भी उनके

अनुकूल ही थे। सृष्टिका नियम है कि धार्मिक मनुष्य को उपयुक्त बाह्य सहायता मिलती रहती है; यहाँ तक कि प्रकृति भी उसके अनुकूल हो जाती है। कपिलवस्तुके एक ओर तो कोशल देश था और दूसरी ओर मगधदेश। कपिलवस्तु नगर इन दोनोंके बीचों-बीच था। इन दोनों देशोंके राजा आपसमें लड़ रहे थे; इससे राजा शुद्धोदनके राज्यपर छापा मारनेका अवसर एक को भी प्राप्त नहीं हुआ। इससे शाक्य लोग स्वाधीनता के मधुर फलका आस्वादन करते रहे।

जिस रोहिणी नदीके किनारे शुद्धोदन की राजधानी थी, उसीके सामने कोली नामका एक नगर था। वहाँ के निवासी 'कोली' कहलाते थे। इन कोली लोगों में और शाक्य लोगों में, रोहिणी नदी के अधिकार के लिये, अनेक युद्ध हुए थे; पर जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं अर्थात् ईस्वी सन् पूर्व्व ६०० में इन दोनों के बीच मेल-जोल था; क्योंकि कोली राजा की दो पुत्रियों—महामाया और गौतमी का विवाह राजा शुद्धोधन के साथ हुआ था। महामाया और गौतमी जितनी ही अनुपम सुन्दरियाँ थीं, उतनी ही नम्र थीं। सहपत्नी होते हुए भी, दोनों बड़े प्रेमसे रहती थीं। राजा इससे अपने तई हर तरह परम सौभाग्यशाली समझता था। प्रजा भी बड़ी राजभक्त थी।

राजा को यदि कोई दुःख था तो वह यह था, कि राजा निःसन्तान था; पर उसके पुण्योदयसे उसका यह दुःख भी



वह हाथी अपनी सूँड़ में श्वेत पद्म पकड़कर रानी के महल में आया और तीन वार मस्तक झुका दाहिनी बगल से गर्भ में प्रवेश कर गया। पृष्ठ ३

शीघ्रही दूर हुआ। एक समय दक्षिणायन महोत्सव के सातवें दिन, रानीने अपने शयन-गृहमें पलँग पर सोते सोते एक दिव्य स्वप्न देखा। यह बड़ा ही अनोखा स्वप्न था। रानीने स्वप्न में देखा कि, एक भव्य छः किरणवाला गुलाबसा लाल और मोतीसा सफेद तारा आकाश से नीचे गिर रहा है और वही तारा ज़मीनका स्पर्श करके, बर्फ तथा कामदुग्ध गायके दूधके समान सफेद हाथी बन गया। वह हाथी पीछे अपनी सूँड़ में श्वेत पद्म पकड़ कर, रानीके महलमें आया और तीन बार मस्तक झुका कर दक्षिण बाजूसे गर्भमें प्रवेश कर गया।

इस स्वप्नको देखनेसे, स्वप्नावस्था में भी, मायादेवी को जैसा अपूर्व—अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ, वैसा सामान्य माताओंको कभी नहीं हो सकता। स्वप्नके पूरे होते ही, रानी की आँख खुली। गद्गद हृदय से उसने यह शुभ समाचार अपने पूज्य पतिसे निवेदन किया।

राजा शुद्धोदनने प्रात:काल होते ही स्वप्न-पाठकोंको बुलाया और इस स्वप्नका फल पूछा। उन्होंने कहा,—"सूर्य कर्कराशि का होनेसे, रानी साहिबा एक अलौकिक प्रतिभाशाली पुत्र जनेंगी। वह पुत्र या तो चक्रवर्त्ती राजा होगा या पृथवीकी अज्ञानता एवं बोझको हलका करनेवाला होगा।"

संसारमें आजकल जितने महात्मा—दिव्यपुरुष—संसारके उद्धारकर्ता होगये हैं, उनके गर्भमें आते ही, उनकी माताओंको दिव्य स्वप्न दीखनेके प्राय: सब धर्मशास्त्रों में उल्लेख हैं। सूर्य

के उदयके पूर्व जो लालिमा छा जाती है, वह जिस तरह सूर्य्योदयकी सूचना देती है, उसी तरह संसारमें किसी महात्मा के आनेकी सूचना देनेवाला उसकी माताको आया हुआ दिव्य स्वप्न समझा जाता है। जो लोग पुनर्जन्म के सत्य सिद्धान्त पर विश्वास रखते हैं, जिन्हें सृष्टि की दिव्य शक्तियों का परिज्ञान है—जो आध्यात्मिक रहस्य से भली भाँति परिचित हैं, जो जानते हैं कि सृष्टिमें ऐसे अलौकिक पदार्थ भरे हुए हैं, जिनका ज्ञान हमें अपनी इन स्थूल इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता और उन पदार्थों की संख्या दृष्टिगोचर पदार्थों से लक्षावधि अधिक है, जो परमात्माके प्रेमी हैं—आत्माकी अनन्त शक्तियों से परिचित हैं, वे इसकी सत्यता पर कभी अविश्वास न करेंगे। हम देखते हैं कि, प्रायः सब धर्म्म-शास्त्रोंमें इस तरह के स्वप्नोंके उल्लेख पाये जाते हैं। जैनियोंके तीर्थङ्करोंके सम्बन्धमें भी, उनके धर्म्मशास्त्रों में, उनकी माताओंके सोलह दिव्य स्वप्नोंका उल्लेख है। जब कोई महान् भाग्यशाली जीव किसी भाग्यवती माताके गर्भमें आता है, तब कोई न कोई शुभ चिह्न अवश्य प्रकट होते हैं। हमही नहीं, पर आजकल के वे पाश्चात्य विद्वान् जो मानसिक आध्यात्मिक शक्तियोंका अभ्यास कर रहे हैं, इस बातकी सत्यता पर मुक्तकण्ठसे विश्वास कर रहे हैं। कहनेका सारांश यह कि, महात्मा बुद्ध, जिसने सारे संसारमें एक तरहका अलौकिक प्रकाश फैला दिया, जिसके कारण लक्षावधि सन्तप्त हृदयोंको शान्ति-सुखका अनुभव हुआ, जिसके कारण

मनुष्य ही क्या—पशु पक्षी तक निर्भय होकर विचरने लगे, ऐसे महापुण्यशाली जीवके गर्भमें आनेसे यदि उसकी भाग्यवती माताको कोई दिव्य—अलौकिक—स्वप्न दीख पड़ा, तो इसमें क्या आश्चर्य ? क्या विस्मय ? क्या तअ़ज्जुब है ?

जो नियम गर्भवती स्त्रीको पालन करने चाहियें, वे सब नियम रानी मायादेवीने भली भाँति पालन किये। गर्भके दसवें मासमें, यह पुण्यवती रानी अपने पूज्यपति की आज्ञा लेकर अपने पीहर—कोली नगर—के लिये रवाना हुई। मार्गमें लुम्बिनी नामक एक बड़ा ही सुन्दर एवं मनोहर कुञ्ज आया। रानी उसकी सुन्दरता देखनेके लिये एवं घण्टाभर आराम करनेके लिये वहाँ ठहरी। वहीं, एक शाल-वृक्षके नीचे, हमारे चरित्रनायक का जन्म हुआ। यह शुभ दिन, ईस्वी सन् पूर्व के ६२३ वर्षकी, वसन्त पौर्णिमा का था। यही शुभ दिन, पीछेसे, संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा गया ; क्योंकि इसी दिन भविष्यमें करोड़ों मनुष्योंको तारनेवाले महात्मा बुद्धका जन्म हुआ।

इस बालकके मुखपर, एक तरहका सूर्य्यके समान, अलौकिक प्रकाश चमक रहा था। सूतिकागृह भी दिव्य प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा था।

यह शुभ समाचार रानीके पितृ-गृह एवं ससुर-गृह में शीघ्र ही पहुँचा। हज़ारों दास-दासियाँ प्रसव-स्थानपर आ पहुँचे और रानी तथा राजकुमारको पालकीमें बिठलाकर कपिलवस्तु

ओर ले गये। इस समय कपिलवस्तु की शोभा परम मनोहर थी। जगह जगह आनन्द मनाया जा रहा था। घर घर में तोरणादि सुशोभित किये गये थे। अनेक तरहकी दिव्य सामग्रियोंसे मकान सजाये गये थे। मतलब यह कि, उस समय कपिलवस्तुकी शोभा स्वर्गके समान हो रही थी। सच तो यह है कि, कपिलवस्तु उस दिन अपनी मनोहर शोभा से सुरपति की सुरपुरी का सिर नीचा कर रही थी।

बौद्ध-धर्म्म-शास्त्रोंमें लिखा है, कि इस समय देवताओंमें भी आनन्द छा रहा था। देवतागण पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। गन्धर्व्व अनेक तरह के मनोहर गीत गारहे थे। तीनों ही भुवनोंमें, स्वर्गलोक और मृत्यलोक की तो बात ही क्या—नरक तकमें, एक क्षण के लिये शान्ति छा गई थी। नागराजने (एक तरहके देव) प्रथम महात्मा बुद्ध का अभिनन्दन किया और उनके अभिनन्दनार्थ मन्दार पुष्पकी वृष्टि की और जगत्‌के उद्धारके लिये अवतीर्ण हुए, इस महापुरुष को नमस्कार करके आनन्द और भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। इस समय हिंसक जन्तु अपना अपना स्वाभाविक विरोध भूल गये। इस वक्त सब तरह के रोग और पीड़ाएँ लोप हो गईं। इस तरह चहुँ ओर शान्तिका अटल राज्य होगया। यदि इस समय कहीं अशान्तिका राज्य था, तो वह मारराज और मोहराज के हृदयमें था। जगदुद्धारक पुरुषोंका जन्म ऐसोंके लिये दावा-नल का काम देता है।

इस बालक के शुभ लक्षण देखकर, सामुद्रक-शास्त्रियोंने राजासे निवेदन किया—"यह बालक महान् चक्रवर्ती राजा होगा। हज़ारों वर्षों में एकाध ही इस तरह का प्रतापी जन्म लेता है। अमुक चिह्नों के कारण यह बालक भविष्य में अखिल भूमण्डलको तारनेवाला देवी गुरु होगा। यदि यह संसार में रहना उचित समझेगा, तो एक महान् चक्रवर्ती राजा होगा और सब राजा इसके चरणोंमें पड़ेंगे। पर्वतोंमें जैसा सुमेरु, धातुओं में जैसा स्वर्ण, जलाशयों में जैसा समुद्र, तारकाओं में जैसा चन्द्र, वैसा ही मनुष्यों में यह होगा।

इस भविष्य कथन को सुनकर राजा को जो अपूर्व प्रसन्नता जो अलौकिक सुख, जो अप्रतिहत आनन्द, जो अवर्णनीय आह्लाद हुआ, उसको यथेष्ट रूप से दर्शाने की शक्ति लेखक को लेखनीमें नहीं है। उस सुखका अनुभव वही कर सकता है, जो इस तरहका सुख प्राप्त करनेमें भाग्यशाली हुआ हो। आजके दिन नगरमें महोत्सव करनेके लिये डोंडी पिटवाई गई है। जहाँ तहाँ सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया है। घर घर एवं रास्तों पर तोरण, ध्वजा और पताकायें लगाई गईं हैं। अनेक तरहके खेल हो रहे हैं। लोगोंके झुण्डके झुण्ड उन्हें देखनेके लिये जमा हो रहे हैं। नगरके सब ही लोग, क्या अमीर क्या ग़रीब, आह्लादित एवं परम हर्षित होकर, राजाको नज़र करनेके लिये झुण्डके झुण्ड जाते हुए दिखाई देते हैं। राजाने क़ैदी छोड़ दिये; कितने ही राज-कर माफ़ कर दिये;

सत्पात्रोंको बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ दीं; साधु-सन्तोंको भोजन कराया; प्रजाको जिस-जिस बातकी आवश्यकता थी, राजा ने सब पूरी की।

यह सब धूमधाम हो ही रही थी, कि इतनेमें असित (काल देव) नामक एक वृद्ध संन्यासी उस बालकके पास आया। संसारका मायामय सङ्गीत सुननेके लिये जिनके कान बहरे हैं, ऐसे योगिजन भी स्वर्गीय सङ्गीत सुननेके प्रेमी होते हैं। इस वृद्ध संन्यासीने बुद्धदेवका बधाई-मँगलाचार देवोंसे सुना था और इसीसे वह यहाँ आया था। बुद्धिमान् शुद्धोदन राजा इस योगीके पैरोंपर गिरा। मायादेवीने चाहा कि बालकको भी इस परम पवित्र पुरुषके पैरों पर गिराऊँ। रानी ऐसा करने ही वाली थी कि उस योगीने कहा,—"हे भाग्यवती माता! मेरे पैरोंमें संसारके इस भावी उद्धारकर्त्ताको गिराकर मुझे क्यों पाप में डालती है?" यह कहकर, वह स्वयं कुमारको साष्टांग दण्डवत् करके बोला,—"पैरमें पद्म, हाथमें स्वतिक आदि ३२ मुख्य और ८० छोटे लक्षणोंको धारण करनेवाले हे बालक! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। हे बुद्ध! हे धर्मका उपदेश करके मनुष्यमात्रको दुःख से मुक्तिका रास्ता बतानेके लिये जन्मे हुए महाभाग्य! तुम्हें नमन करता हूँ।"

पीछे वह संन्यासी राजाकी ओर देखकर बोला,—"हे महाभाग्यशाली राजन्! ऐसे एक अत्यन्त प्रतापी पुत्रका पिता बननेके लिये, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। पूर्व भवके



"धर्मका उपदेश करके मनुष्यमात्रको दुःखसे मुक्तिका रास्ता बतानेके लिये जन्मे हुए महाभाग्य! मैं तुम्हें नमन करता हूँ।" पृष्ठ ८।

पवित्र कर्मों का आज तुझे फल मिला है। लाखों वर्षों में ऐसा एक ही पुष्प उगता है और जब यह होता है; तब अखिल वसुन्धराको ज्ञानकी सुगन्धसे पल्लवित करता है एवं प्रेमके रससे भर देता है। सचमुच, प्रतापी कुल ही में ऐसे जगदुद्धारक जन्म लेते हैं। सचमुच राजन्! तेरा कुटुम्ब बड़ा ही भाग्यशाली है; पर इसमें केवल एक अपूर्णता है। वह यह है कि क्या देव, क्या मनुष्य, सबको प्रिय, संसारके भावी तारक की परम भाग्यवती माता यह मायादेवी, सात ही दिनोंमें बिना किसी पीड़ाके, बिना किसी कष्टके, संसारकी तमाम पीड़ाओंका अन्त प्राप्त करेगी।"

यह कहते ही उस योगीकी आँखोंमेंसे ढलढल आँसू गिरने लगे। यह देखकर राजाको किसी अनिष्टका भय हुआ। ऋषिने राजाका भाव तुरन्त समझ लिया और वह कहने लगा,—"हे राजन्! मैंने जो कुछ भविष्य-कथन किया है वह सब होगा; पर कुमारके विषयमें तो लेशमात्र भी चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। मुझे आँसू बहाते देखकर शायद तुम्हें किसी अनिष्टका भय हुआ होगा, पर इसमें भयकी कोई बात नहीं। मेरे रोनेका कारण कुछ और ही है। यह शरीर अब वृद्ध एवं जर्जर हो गया है और इसका अन्तिम समय अब निकट आ गया है। मैं मरकर देव होऊँगा और फिर मनुष्य-भव में जन्म लूँगा। जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त होनेका अमूल्य बोध आपके पुत्र—इस भावी बुद्ध के मुख-कमलसे सुननेका

सुअवसर मेरे नसीबमें नहीं है, यही मेरे रोनेका कारण है।" यह कहकर ऋषिने अपना रास्ता लिया।

ऋषिके कहे अनुसार, सातवें दिन मायादेवी हँसती हँसती सोई और फिर न उठी। वह स्वर्गमें एक देवी हुई। शुद्धोदनकी दूसरी रानी गौतमीने, जो इस बालककी मासी एवं सौतेली माँ थी, कुमारका लालन-पालन किया।

इस भाग्यशाली पुत्रके जन्मसे राजाके सामन्त और सगे स्नेही विशेष भक्ति-भाव दिखाने लगे। राज-कोष दिन दूना रात चौगुना भरने लगा। हाथी, घोड़े, गाय आदि उत्तम जानवर अपनी खुशीसे राज्यमें आने लगे। लोगोंके हृदयसे द्वेष और वैर-भाव छूट गया। हर एक ऋतुके फल फूल उस वक्त पैदा हो गये। दुष्कालकी सम्भावना मिट गई। योद्धाओंके शस्त्रोंमें ज़ङ्ग लगने लगा। रोग रफूचक्कर हो गये। सामान्य मनुष्य भी ईमान्दारीसे आजीविका करने और उदारतापूर्वक दान करने लगे। यह सब आनन्ददायक परिवर्त्तन जिस महाभाग्यशाली बालकके कारण हुए, उसका नाम सर्वार्थ-सिद्धि रखा गया। नाम रखनेकी क्रिया बड़ी धूम-धामके साथ की गयी। उस समय नगरमें कोई दरिद्र नहीं रहा, क्योंकि सबको उनकी आवश्यकतानुसार राजाकी ओरसे खुले हाथों दान दिया जाता था।

दूसरा अध्याय ।

बाल्यावस्था ।



लक सिद्धार्थ चन्द्रकी कलाके समान बढ़ने लगा। रूप, गुण, कला कौशलमें उसकी असाधारण प्रगति होने लगी। शुद्धोदन राय के सामन्त राजकुमारको खुश करनेके लिये नये नये सोने चाँदीके खिलौने हमेशा भेजा करते थे। कुमार सिद्धार्थको इनसे कुछ भी आनन्द नहीं होता था, क्योंकि इनकी निःसारता और क्षणभङ्गुरताका उसे भली भाँति परिज्ञान था। सचमुच, एक छोटी उम्रके शरीरमें एक महान् आत्मा ने आ निवास किया था।

जब सिद्धार्थ कुमार आठ वर्षका हुआ, तब उसे एक राजा के योग्य कला अथवा ज्ञान सिखानेके लिये शुद्धोदन राय किसी योग्य शिक्षक को खोज करने लगे। जब शुद्धोदन रायने पण्डितों-की सभामें यह बात कही, तब सबने कहा कि राजकुमारको शिक्षा देनेके योग्य तो विश्वामित्र ही हैं, जो सब विद्याओं के ज्ञाता, कला-कौशलमें परिपूर्ण एवं सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं।

पीछे, शुद्धोदन रायने विश्वामित्रको बुलाया और शुभ दिन देख कर कुमारको उनके सिपुर्द किया। शुरू ही में गुरुने नीचे लिखा हुआ गायत्री मन्त्र धीरेसे उच्चार किया और उसके लिखनेके लिये कुमारसे कहा :—

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

कुमारने विनयपूर्वक कहा,—"हाँ, मैं लिखता हूँ" और तुरन्त ही उसे उस समयकी प्रचलित बीस भाषाओंमें लिखकर गुरुको बता दिया।

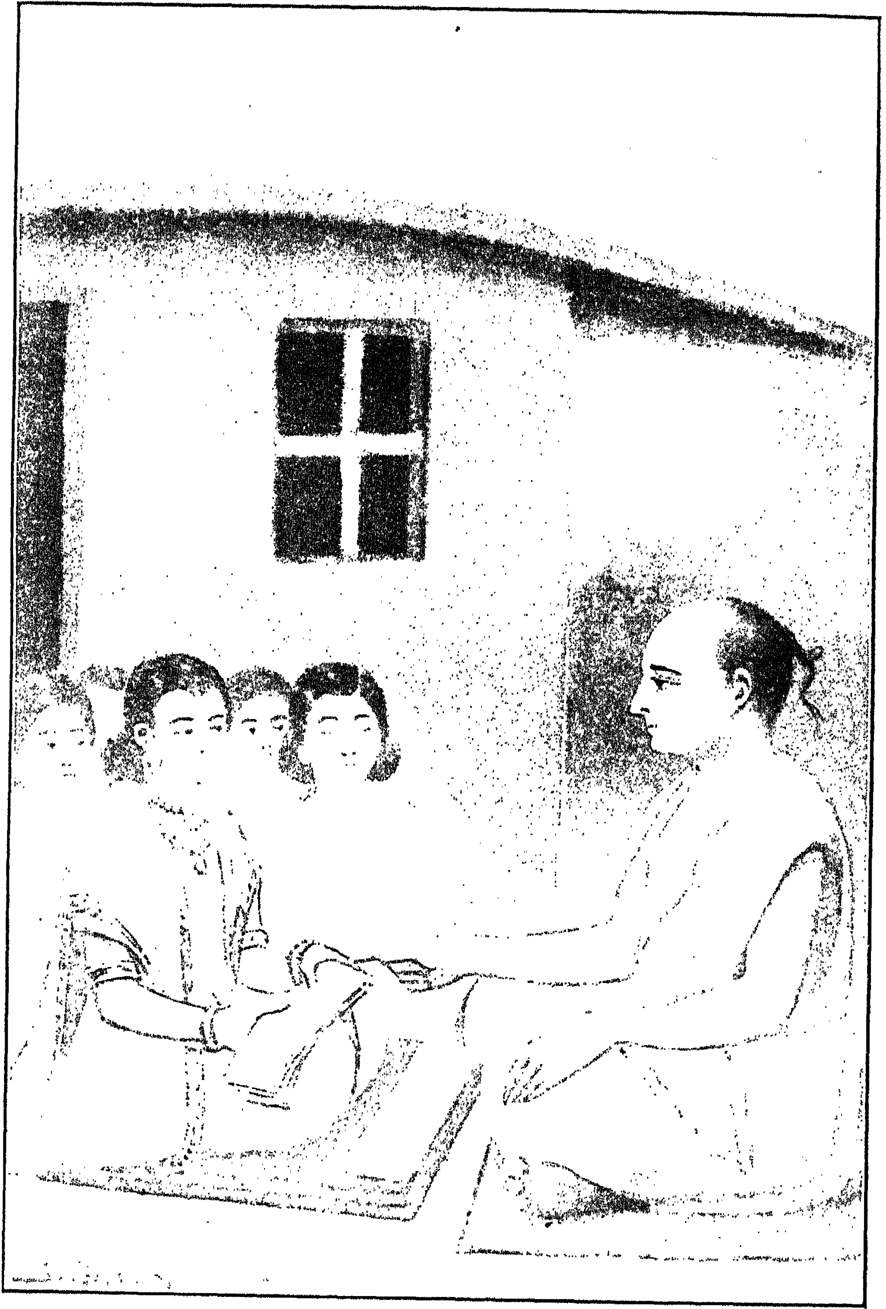
यह देख गुरु बड़े चकित हुए और कहा कि यदि तुम्हें पसन्द हो तो संख्या सिखाऊँ? लो सुनो,—एक, दो, तीन चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दश, सौ, हजार, दस हजार। अच्छा इसे बोल देखो।

कुमार तत्काल ही यह संख्या बोल उठा। इतना ही नहीं, पर आगेकी लक्ष, करोड़ से परार्द्ध तक की संख्या भी अस्खलित वाणी से वह वह बोल गया।

गुरुको यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह कहने लगे कि तुम संख्या भी जानते हो! क्या मैं तुम्हें वज़न का कोष्टक सिखाऊँ?

गुरुके पहिले ही वज़नका सम्पूर्ण कोष्टक कुमार बोल गया। कुमारने यहाँ तक कहा कि यदि आप कहें तो मैं यह

महात्मा बुद्ध



"हे शिष्य ! तू गुरुओं का भी गुरु है। मैं नहीं, पर तू गुरु है। तू यहाँ सीखने के लिये नहीं वरन् मेरी इज़्ज़त बढ़ाने के लिये आया है !"

पृष्ठ १३

भी बता दूँ कि एक योजनमें कितने परमाणु होते हैं और साथ ही कुमारने गिन्ती करके वह बतला भी दिये ।

यह देखकर गुरु एकाएक कुमारके पैरोंमें गिर पड़ा और कहने लगा,—"हे शिष्य ! तू गुरुओंका भी गुरु है ! सचमुच, मैं नहीं, पर तू गुरु है। अतएव हे कुमार ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ । गुरु और पुस्तकोंकी सहायताके सिवा, सर्व ज्ञान प्राप्त किये हुए हे कुमार ! तेरी नम्रता अनुकरणीय एवं पूज्य है। तू यहाँ सीखनेके लिये नहीं, वरन् मेरी इज्ज़त बढ़ानेके लिये आया है ।"

यद्यपि कुमार दूसरोंसे बहुत अधिक ज्ञान रखता था, पर गुरुके प्रति बड़ा ही पूज्य भाव और भक्ति प्रदर्शित करता था एवं अपने सहपाठियोंके प्रति बड़ी ही विनय प्रकट करता था। उसकी वाणी नम्रता और बुद्धिमत्तासे गर्भित थी। उसकी मुखमुद्रा भव्य और उसका स्वभाव सुशील था। शौर्य्य और धैर्य्यका भण्डार होते हुए भी उसके हृदयमें दया, कोमलता और सहानुभूतिका राज्य था ।

सिद्धार्थ कुमारकी दया अनुकरणीय थी। घोड़ा दौड़ानेमें वह अपने मित्रोंसे किसी प्रकार कम नहीं था ; पर जब घोड़ा थक जाता था—उसे श्वास चढ़ आता था, तब वह घोड़ेको रोक देता और उसे पुचकारने लगता था।

एक समय दयाकी साक्षात् मूर्त्ति, सिद्धार्थ कुमार राजाके बग़ीचेमें बैठा हुआ विचार-लीन हो रहा था कि, हँस-पक्षियों

का टोला मधुर कलरव करता हुआ उस ओर आ निकला। पासही कहीं कुमारके चाचाका पुत्र देवदत्त पक्षीको शिकार की घातमें बैठा हुआ था। देवदत्तका हृदय कठोर था। दयाके मधुर अङ्कुर उसके हृदयमें लगे नहीं थे। बेचारे मूक प्राणियों पर तीर चलानेसे उन्हें क्या कष्ट होता होगा, इसका उसे तनिक भी ख़याल नहीं था। उसने हंस-पक्षियोंके टोलेकी ओर तीर चला ही दिया। बेचारे पक्षियोंका आनन्द-कलरव एकदम आर्त्तनादमें बदल गया। वे भय-विह्वल होकर इधर उधर उड़ने लगे। उनमेंसे एक हंस तीरकी चोटसे घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर, क्या दयावतार सिद्धार्थ कुमार कभी चुप बैठा रह सकता था? क्या उसका कोमल हृदय इस हृदय-द्रावक घटनासे बिना पसीजे रह सकता था? तुरत ही उस हंस-पक्षीको उसने उठा लिया और बड़े प्रेमसे उसे अपनी गोदमें बिठा लिया। आहिस्तेसे, हंस-पक्षीके बदनसे, उसने तीर निकाल लिया। उसके ज़ख़्मको गीले चिथड़ोंसे बाँध दिया और बड़े गद्गद हृदयसे उसे आश्वासन देने लगा। सिद्धार्थ कुमारने जब उस तीरकी नोकको अपने हाथमें भोंका, तब उसे उस दुःखका—उस महान कष्टका—सच्चा अनुभव हुआ, जिसे वह पक्षी सह रहा था।

अहा! संसारमें वे ही पुरुष धन्य हैं, उन्हींका जीवन सार्थक है, वे ही मनुष्य जीवनके सच्चे आनन्दका लाभ उठा सकते हैं, वे ही संसारमें पूजनीय होते हैं, उन्हींके जीवनादर्शसे

संसारके भटकते हुए करोड़ों प्राणी तर जाते हैं, जो संसारको दयाका पाठ पढ़ाते हैं, जो प्रेमका सन्देशा सुनाते हैं, जो दुःख का स्वयं अनुभव करके संसारके समस्त जीवधारियोंका दुःख मिटानेके लिये तन-मनसे यत्न करते हैं। ऐसे पुरुषोंके वाससे संसार स्वर्गभूमि बन जाता है—जगत्‌में प्रेमका साम्राज्य हो जाता है। कुमार उस असहाय पक्षीको पुचकार रहा था कि इतनेमें देवदत्तका नौकर आया और कहने लगा,—"हे राज-कुमार! जिस पक्षीको आप बड़े प्रेमसे अपनी गोदमें लिये हुए हैं, इस पर मेरे स्वामी देवदत्तका अधिकार है; क्योंकि उन्होंने इसे तीर मारकर गिराया है। कृपया, इस पक्षीको मुझे सौंप दीजिये।"

सिद्धार्थने उत्तर दिया,—"ऐसा नहीं हो सकता। यदि यह पक्षी मरजाता तो मारनेवालेका हक़ इस पर पहुँचता; पर अभी यह जीवित है, केवल इसके परों पर इज़ा पहुँची है।"

नौकरने यह सब वृत्तान्त अपने स्वामी देवदत्तसे कहा। देवदत्त यह वृत्तान्त सुनकर सिद्धार्थके पास आया और कहने लगा,—"इस पक्षीपर जिस क्षण मैंने तीर चलाया, उसी क्षणसे इस पर मेरा अधिकार होगया है।"

इसपर दयासागर सिद्धार्थने कहा,—"भाई देवदत्त! तुम कुछका कुछ क्या कह रहे हो! क्या तुम यह नहीं जानते, कि मारनेवालेसे बचानेवालेका अधिक हक़ होता है? घातकसे रक्षकका अधिकार ज़ियादा होता है। दया एवं प्रेम-

साम्राज्यके कारण संसारमें जो लाखों पदार्थ मेरे होने वाले हैं, उनमेंसे ही एक यह है। मेरा अन्त:करण ही अब मुझे कह रहा है, कि मैं मनुष्योंको दयाका पाठ सिखाऊँगा। मैं ग़रीब मूक प्राणियोंका वकील बनूँगा और न केवल मनुष्यमात्र होका— वरन् पशु पक्षियों तकके दुःखोंको दूर करूँगा। भाई! इतने पर भी तुझे तकरार करनी है, तो चल; राज-सभामें बुद्धि-मान सभासद जो कुछ आज्ञा करेंगे, उसे हम दोनों स्वीकार करेंगे।"

यह बात देवदत्तने स्वीकार करली। तब वे दोनों राज-सभामें गये। वहाँ इन दोनोंके हक़के सम्बन्धमें बड़ा वाद-विवाद हुआ। कितने ही सभासद कहने लगे कि इस पर देवदत्तका हक़ है, क्योंकि उसने इसे गिराया था। इस तरह ज़ोर-शोरसे वाद विवाद चल रहा था कि, एक वृद्ध ऋषि वहाँ आ पहुँचा। उसने दोनों पक्षकी बातें सुनकर कहा,—"यदि जीवनका कुछ मूल्य है, तो जिसने मारनेका यत्न किया उससे बचानेवालेका इस जीवित प्राणीपर विशेष हक़ है।" उस वृद्ध पुरुषका कथन सबको न्याययुक्त मालूम हुआ। ज्योंही राजा उस ऋषिका सत्कार करनेके लिये उठा, त्योंही वह ऋषि अन्तर्धान होगया।

सिद्धार्थ कुमारको दुःखका यह अनुभव प्रथम ही हुआ था; पर यह अनुभव उसके हृदय पर स्थायी असर नहीं कर सका; क्योंकि वह पक्षी थोड़े ही समयमें आनन्दपूर्वक अपने सह-

चरोंके साथ आकाशमें उड़ने लगा। पर भावी बुद्धदेव, वर्तमान सिद्धार्थ कुमार को,दया प्रकट करनेके लिये शीघ्र ही एक दूसरी घटना हुई। उससे उनके हृदयपर स्थायी असर हुआ।

एक दिन राजाने कुमारसे कहा,—"वत्स! आज मैं तुझे वसन्त ऋतुकी शोभा बताना चाहता हूँ। मैं तुझे अपने साथ बाहर ले जाकर खेतोंकी खड़ी साख और पृथवीकी हरियाली की अपूर्व शोभा बताना चाहता हूँ। इससे तुझे बड़ा आनन्द होगा।"

कुमारने राजाके चरणोंमें मस्तक नवाया। राजा और कुमार दोनों खेतोंमें पहुँचे। उस समय चहुँ ओर पक्षी मधुर कलरव कर रहे थे। सफ़ेद बगुले क़तार बाँधकर नदी-किनारे खड़े हुए थे। आकाशमें चिड़ियोंके झुण्डके झुण्ड उड़ रहे थे। शहरमें बजनेवाले बाजोंकी आवाज़ कानोंके परदों पर टकरा रही थी। चारों ओर शान्ति और आनन्द छा रहा था; पर इन सब आनन्ददायक बातोंमें छिपा हुआ दुःखका पर्वत कौन देख सकता था? इनका असली, आन्तरिक स्वरूप देखनेवाला एक मात्र बुद्ध ही था, जिसने उसी समय यह प्रकट किया कि, जीवनके गुलाबमें दुःखके काँटे छिपे हुए हैं। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि गाँववालोंको, अपना पेट भरनेके लिये, कैसा सख़्त काम करना पड़ता है! सख़्त गरमीमें, अबोल बैलके नरम चमड़ेपर किसान कैसी बेरहमी—कैसी निर्दयतासे, उसके कष्टका ख़याल न करके,

चाबुक लगाता है! गिलहरी चींटीको किस तरह निगल जाती है और नेवला सर्पको किस तरह अपना शिकार बनाता है! साधु वृत्तिवाला सफ़ेद बगुला आनन्दसे कल्लोल करता हुआ, देखते-ही-देखते, मछलियोंको कैसे हड़प जाता है!

फिर सिद्धार्थ कुमार दयापूर्ण दृष्टिसे अपने पिताकी ओर देखता है और नम्रतासे कहता है,—"पिता जी! पिताजी! क्या यही आपका वह आनन्द-स्थान है, जिसे दिखलानेके लिये आप मुझे यहाँ लाये हैं? ख़ून-ख़राबीके सिवा, यहाँ और मैं क्या देख सकता हूँ? क्या पृथ्वीपर, क्या पानीमें, क्या हवामें, क्या अन्तरीक्षमें, चहुँ ओर जीवनकी मारा-मारी और कलह हो रहा है! इसमें जो मनुष्य आनन्द मानता है, वह सचमुच कठोर-हृदय का मनुष्य है। पिता जी! मुझे अभी यहाँ अकेला ही रहने दो, जिससे कि मैं इन देखे हुए पदार्थों पर विचार कर सकूँ।"

पिताने कुमारको ऐसा करनेकी आज्ञा दी। कुमार अकेला रह गया। वहाँ वह एक जम्बु वृक्षके नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गया।

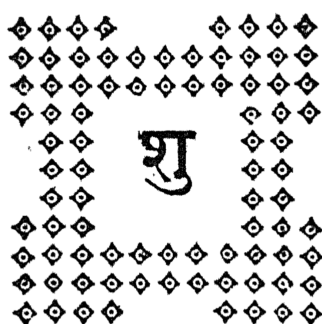
"हा! कैसा जीवन-कलह है! इसका मूल क्या है? इसका उपाय क्या है?" इन्हीं विचारोंका ताँता कुमारके मनमें लग रहा था। इसी समय दयाका पूर्ण प्रकाश उसके हृदयमें चमक उठा और ध्यानकी प्रथम सीढ़ीपर वह चढ़ा।

प्रातःकाल पूरा हो गया; दोपहर का भी अन्त होगया; पर वह अविच्छिन्न रूपसे ध्यानमें ही मग्न रहा।

आख़िर सन्ध्या होती है और पिता पुत्रको साथ लेकर राज-महलको ओर जाता है।

तीसरा अध्याय

युवा अवस्था।



द्धोदन राजा अपने पुत्ररत्नको अनुपम दया और चिरध्यानाग्रस्त अवस्था देख कर बड़े सोच-विचारमें पड़ा। ऐसा कौन पिता है, जो अपने पुत्रको योगी होते हुए देख कर खुश होगा? कितने ही गुण और कार्य्य ऐसे हैं, जिनकी केवल प्रशंसा हो सकती है, अनुकरण नहीं हो सकता। भर यौवनावस्थामें वैरागी होनेवालेकी प्रशंसा करनेवाले बहुत निकल आवेंगे; पर अपने पुत्र अथवा अपनेहीको वैरागी बनानेका विचार हज़ारोंमें एकाध ही को होता है। क्या माया का यह कुछ कम प्राबल्य है?

राजा शुद्धोदनने जब देखा कि, कुमार वैरागियोंकी—संसार-त्यागी पुरुषोंकी—सुहबतमें रहता है; तब वह कुमारको इस सुहबतसे अलग रखनेके लिये, अनेक तरहके यत्न करने लगा। वह हमेशा इसी विचारमें रहा करता था,—क्या स्वप्न-पाठकोंकी

बात सत्य होगी ? क्या मैं आत्म-संयम और देह-कष्टके मार्गसे अपने पुत्रको नहीं रोक सकूँगा ? अन्तमें राजाने एक युक्ति ढूँढ़ निकाली। कुँवरके मनको विलासितामें रोक रखनेसे देह-कष्ट-सम्बन्धी ख़याल, वैराग्य-सम्बन्धी विचार उसे स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे। ऐसा विचार कर उसने कुँवरके लिये जुदी जुदी ऋतुओंके अनुकूल, बड़े ख़र्चसे, तीन भव्य महल बनवाये। उनके चहुँ ओर भिन्न-भिन्न ऋतुओंके अनुकूल बग़ीचे लगवाये। इन महलोंमें कुँवर रक्खा जाता था और उसका मन वैराग्यसे रोकने के लिये नित्य नई वस्तुएँ वहाँ लाई जाती थीं। इस तरह की चित्ताकर्षक वस्तुओंसे उदासीन रहना, मनुष्यके लिये एकदम असम्भव है; पर देवताओंके देव, संसारके भावी बुद्ध, सिद्धार्थ कुमारको इनमेंसे कोई भी चीज़ आकर्षित नहीं कर सकी; क्योंकि राजकुमारका मन तो वैराग्य ही की सुन्दरतामें रम रहा था। बाग़में हवा खानेके बदले मानसिक बाग़में—ध्यान-वाटिकामें वह घण्टों स्थित रह जाता था। हर समय प्राप्त होनेवाली मनोहर चीज़ोंसे मोहित होनेके बदले, वह उनकी क्षण-भङ्गुरताका घण्टों तक विचार किया करता था।

इससे राजाकी चिन्ता दिनों-दिन बढ़ती ही गयी। अन्तमें उसने अपने सामन्त और नगरके सुज्ञ मनुष्योंको बुलवाकर उनकी सलाह पूछी। शाक्यने सर्वानुमतिसे यह कहा :—"महाराज! अन्धकार दूर करनेके लिये दीपक जैसा राम-बाण उपाय है; वैसे ही विरागीको अनुरागी बनानेका रामबाण

उपाय स्त्री है। कोमल प्रेम-शृङ्खला लोहेकी साँकलसे भी ज़ियादा मज़बूत है। जो मज़बूत बेड़ीसे भी न बाँधा जा सके, उसे स्त्री-बेड़ी बाँध सकती है।

इस बातको पार पटकनेके लिये राजाने एक उत्सवका प्रारम्भ किया और नगरकी सब सुन्दरी कुमारियोंको राज-कुमारके हाथसे हीरे माणिकसे भरे हुए सुन्दर पात्र लेनेके लिये निमन्त्रण दिया।

रतिको भी मात करनेवाली, अनेक रूपलावण्ययुक्त कुमा-रियाँ राज-महलके भव्य दीवानख़ानेमें एकके पीछे एक आने लगीं। इनके मस्तकके केश बड़ी ही सुन्दरतासे गुथे हुए थे और उनमें अनेक रंग विरंगे पुष्प लगाये गये थे। हिरण को भी नीचा दिखानेवाली इनकी आँखें अञ्जनसे और भी चित्ताकर्षक दीख पड़ती थीं। आकाशके चन्द्रकी तरह उनके विशाल भालमें चन्द्र शोभायमान थे। गुलाब के फूल की तरह उनके मुख-कमल स्वाभाविक हास्यसे खिल रहे थे। न सूँघे हुए पुष्पके समान उनके वदन-कमलसे एक तरहकी विलक्षण सुगन्ध छूट रही थी। उनके सुकोमल बदन के बारीक मूल्यवान वस्त्र देखनेवालेकी आँखोंको अजीब तरहका आनद दे रहे थे।

अब कुमार दीवानख़ानेमें दाख़िल होता है। कुमारियों की पारदर्शक नाड़ियोंका स्वच्छ रक्त ज़ियादा ज़ोरसे गति करने लगता है। एकके पीछे एक कन्या अपने पैरके अँगूठेको



बुद्धकी पूर्वजन्मकी पत्नी और भविष्यकी अर्द्धाङ्गिनी कुमारके सन्मुख आकर खड़ी होती है। "मैं तुम्हें भूल गया था। इस भूलके दण्डस्वरूप मैं तुम्हें अपने कण्ठ का हार देता हूँ।" पृष्ठ २३।

ओर स्थिर दृष्टि करके लजाती-लजाती कुमारके आसनके पास आती है और अपना कनकलतासा हाथ लम्बा करती है। कुमार उसमें स्वर्णपात्र रखता है और वह विदा होती है। अहा! क्या ही मनोहर दृश्य है! अप्सराओंकी सभामें बैठ कर, उन्हें पुरस्कारोंसे प्रफुल्लित कर, उनकी खिली हुई कान्ति देखनेका क्या ही सरस अवसर है! पर उन्हें देखता कौन है? सिद्धार्थ कुमारने तो सब पात्रोंके पूरे हो जाने तक, एक भी कन्याकी ओर नज़र उठाकर नहीं देखा। एक भी कन्या उसका आकर्षण नहीं कर सकी।

अब बुद्धकी पूर्व जन्मकी प्रिय पत्नी, इस जन्मकी बुद्धके मामाकी लड़की, यशोधराकी बारी आती है। सब कुमारियाँ स्वर्ण-पात्र लेकर अपना अपना रास्ता लेती हैं। अब सब स्वर्णपात्र खतम हो चुके हैं। सब पात्रों पर हक़ रखनेवाली; पर जिसके लिये एक भी पात्र न रहा, ऐसी बुद्धकी पूर्वपत्नी और भविष्यकी अर्द्धाङ्गिनी, अपने हिस्सेका स्वर्णपात्र लेनेके लिये, कुमारके सम्मुख आकर खड़ी होती है। पूर्वके संस्कार ताज़ा होनेसे दोनों का एक दूसरेकी ओर आकर्षण होता है। फिर यह दिव्य कुमारिका निर्भयतासे कुमारकी ओर देखती है और कहती है,—"क्या मुझे भी कुछ हिस्सा मिलेगा?"

इस पर कुमार जवाब देता है,—"हाँ, हिस्सा तो तुम्हें मिलना चाहिये, पर सुन्दरियोंकी रानी! मैं तुम्हें भूल गया था। इस भूलके दण्ड स्वरूप, मैं तुम्हें स्वर्णपात्रके

बदले यह कण्ठका हार देता हूँ ।" यह कहकर तुरन्त ही राजकुमारने अपने गलेसे माणिकका हार निकालकर यशो-धराके गलेमें पहना दिया। कहना न होगा, कि हारके साथ साथ कुमारने अपना अन्तःकरण भी दे दिया। चार आँखोंके मिलापसे प्रेम देवने जन्म लिया! पूर्वका सम्बन्ध फिरसे जुड़ गया—ताज़ा हो गया ; पर वह यहाँ तक ही। तत्काल वह मुग्धा हार लेकर वहाँ से चली चली गयी ।

अब राजा शुद्धोदनके हर्षका पार नहीं रहा। जब राजाने राजकुमार और यशोधराकी प्रेममय वार्त्ताका समाचार सुना, तो उसने तुरन्त ही यशोधराके पिताके पास पुरोहितको भेजा और यशोधराकी माँग की ; पर उस समय कन्या सरीखा रत्न कुछ माँगनेसे नहीं मिलता था। शाक्य लोगोंके यहाँ यह रीति प्रचलित थी कि, जो मनुष्य कन्या को वरना चाहता था, उसे दूसरे मनुष्योंकी प्रतियोगितामें अपना तेज प्रकट करना होता था—सब युद्ध कलाओंमें अपनी निपुणता दिखानी होती थी। शुद्धोदन राजाके कुमार के लिये भी इस नियममें हेरफेर नहीं हो सकता था। अतएव यशोधराके पिता दण्डपाणिने पुरोहितके साथ यह प्रत्युत्तर कहला भेजा कि, इक्ष्वाकु वंशका क्षत्रिय, कुछ वीरत्व देखे बिना, अपनी कन्या किसी को नहीं दे सकता। वीरोंके खेलमें यदि आपके कुमार दूसरे उम्मेदवारोंको प्रतिद्वन्द्वतामें पीछे हटा देंगे, तो मैं अव-श्यमेव उन्हें अपना जामाता बना लूँगा; पर घरमें बैठनेकी इन

की आदत को देखते हुए, इनके लिये बड़ी आशा रखना आकाशमें महल बनानेके समान है।"

यह उत्तर जब पुरोहितने अपने राजासे निवेदन किया,तब सिद्धार्थ भी पास ही बैठा था। पुरोहितकी बात सुनकर राजा निराशा और शोकमें डूब गया। वह कहने लगा—"धनुर्विद्यामें देवदत्तके समान कोई दूसरा निपुण नहीं; अस्त्रविद्या में अर्जुनका पहला नम्बर है; तलवार चलानेमें नन्द सबसे आगे बढ़ता है। मेरे प्यारे सिद्धार्थ को ऐसी प्रतिद्वन्द्वतामें यशोधरा का प्राप्त होना दुष्कर है।"

यह सुनकर सिद्धार्थने बड़े ज़ोर से कहा,—"पिताजी! चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। क्षत्रिय-पुत्रको युद्ध-कला सीखनेके लिये कहीं जाना नहीं पड़ता है। यह तो उसे स्वभाव ही से प्राप्त हुई रहती है। ऐसी निर्मूल बातोंके लिये, मैं एक प्रेम-पात्र को खोना नहीं चाहता। आप खुशीसे इस प्रतिद्वन्द्वताकी तैयारी कीजिये।"

प्रतिद्वन्द्वताके मैदानमें आनेवाले सब उम्मेदवारोंको डौंडी द्वारा यह ख़बर दे दी गयी। सब मैदानमें आ डटे। कुमार सिद्धार्थ भी घोड़े पर सवार होकर वहाँ जा पहुँचा। सुन्दर पालकीमें बैठकर यशोधरा भी अपनी सखियों और परिजनों के साथ वहाँ आ पहुँची। तब सिद्धार्थने कहा,—"इस रत्नको प्राप्त करनेके लिये, सर्वोत्तम के सिवा दूसरा कोई योग्य नहीं। जो कोई यह कहना चाहता है कि, मैं यशोधराको प्राप्त करने

के योग्य हूँ, उसको मैं अपनी प्रतिद्वन्द्वता में उतरनेको निमन्त्रण देता हूँ ।"

इस आमन्त्रणको पहले-ही-पहल नन्दने स्वीकार किया और कहा,—"यदि ऐसा है,तो पकड़ो धनुषको और आजाओ मेरे सामने।" यह कहते ही उसने छः गाँवके अन्तर पर रक्खे हुए ढोल को तीरसे छेद दिया। इसके पीछे अर्जुनने भी ऐसा ही किया। देवदत्त ने आठ गाँवके अन्तर परसे ढोल को छेद दिया। यह देखकर सब कोई आश्चर्य्य चकित हो गये और यशोधराने अपना मुँह अपनी साड़ीसे ढाँक लिया। अब सिद्धार्थ एक रुपहरी तीर कमान लेता है और असाधारण मनुष्यसे भी जो कठिनतासे खींचा जा सके, ऐसा वह धनुष खिंचते ही टूट जाता है। फिर शाक्यकुमार कहते हैं, "बालकके खेल खेलनेका यह धनुष यहाँ कौन लाया है? क्या शाक्यकुमार के योग्य कोई धनुष ही नहीं है।" फिर सिंहधनुका धनुष मँगवाया जाता है। इस धनुषको चलाने वाला उस समय कोई जन्मा ही न था। इस धनुषकी सुनहरी डोरी चढ़ाने का तीनों ही योद्धा यत्न करते हैं,—उछलकूद मचाते हैं, पर फिर भी असफल ही होते हैं।

इनकी तरफ स्मितयुक्त दृष्टि करके राजकुमार धनुष की डोरीको कानों तक चढ़ाता है और ऐसे ज़ोर से बाण चलाता है कि, दश गाँव के अन्तर पर रक्खे हुए ढोल को छेद देता है।



राजकुमार धनुष की डोरी को कानों तक चढ़ाता है और ऐसे ज़ोर से वाण चलाता है कि दस गाँव के अन्तर पर रखे हुए ढोल को छेद देता है। पृष्ठ २६

एक प्रतिस्पर्धा पूरी हुई। सिद्धार्थको जयसे शर्माये हुए देवदत्तने अब तलवार चलानेकी प्रतिद्वन्द्वतामें उतरनेका चैलेञ्ज दिया और उसने छः इञ्च मोटे वृक्षको एकदम उड़ा दिया। अर्जुनने सात इञ्च और नन्दने नौ इञ्च मोटे वृक्ष को "द्विधाविभक्त" किया; पर सिद्धार्थने तो दो सूखे हुए वृक्षोंको एक दमसे काटकर ही फेंक दिया।

अब मदोन्मत्त घोड़ोंके दौड़ानेकी स्पर्धा होती है। तीन बार प्रदक्षिणा करके, सवारोंने अपने अपने घोड़ोंको खूब ज़ोर से दौड़ाया। इसमें भी सिद्धार्थ का घोड़ा सबके आगे जाता था।

नन्द को सिद्धार्थकी इस विजयसे बड़ी ईर्षा उत्पन्न हुई। वह कहने लगा,—"कन्थक जैसे घोड़ेपर सवार होकर सफल होना, कोई बहादुरी नहीं। यह घोड़ा यदि हमें दिया जावे, तो हम सबके आगे निकल जावें। सच्ची परीक्षा तो तभी हो सकती है, जबकि एक नया मस्त घोड़ा लाया जावे और फिर देखा जावे कि घोड़ा दौड़ानेमें कौन कितनी सामर्थ्य रखता है।" इस पर, तीन साँकलों से बँधा हुआ, विकराल आँखोंवाला, बिना लगाम ज़ीनका एक घोड़ा लाया गया। इन तीनों ही योद्धाओंने उक्त घोड़ेपर चढ़ने का तीन बार यत्न किया, पर हर बार उसने उन्हें नीचे धूलमें गिरा दिया। अन्तमें अर्जुन उस घोड़ेपर चढ़ने की सफलता प्राप्त कर सका; पर थोड़ी ही दूर जाने पर, उस मस्त घोड़ेने उसे पत्थर की तरह नीचे फेंक दिया।

यह देखकर लोग घबरा गये और कहने लगे,—"इस भूत से सिद्धार्थ कुमारका काम न पड़े तो ठीक हो।"

अब सिद्धार्थ की बारी आती है। वह घोड़ेके पास जाता है, घोड़ेकी सांकल को खोलता है, उसके केश पकड़कर उसके कानोंमें कुछ शब्द कहता है और उसकी आँखोंपर अपना बाँया हाथ फेरता है। फिर वह अपने हाथको घोड़ेके विकराल मुंहकी ओर ले जाता है और अन्तमें उसकी गर्दनपर हाथ फेरकर उसपर सवारी करता है। वह जंगली प्राणी गाय के समान हो जाता है और अपने स्वामीकी आज्ञानुसार चलने लगता है।

अब सब मनुष्य जय जयकार करते हैं और कहने लगते हैं,—"धन्य है! धन्य है! सिद्धार्थ कुमार सबसे श्रेष्ठ ठहर चुके। अब अन्य परिश्रम की आवश्यकता नहीं"। उक्त तीनों योद्धाओंने भी सिद्धार्थ कुमारकी श्रेष्ठता मुक्तकण्ठसे स्वीकार कर ली।

इस इच्छित परिणाम को देखकर दण्डपाणि आनन्द एवं आश्चर्यमें डूब गया! अपनी पुत्रीको मन-चाहा पति मिल गया, यह देखकर उसके हर्षका पार न रहा और यह देखकर कि गुलाबके पुष्पोंमें और विचारके स्वप्नोंमें पले हुए सिद्धार्थ कुमारने इतनी अद्वितीय वीरता दिखाई, उसके आश्चर्यका पार नहीं रहा। जयघोष होही रहा है, कि इतनेमें पिताके सङ्केत मात्रसे, यशोधरा अपने मुंहपर वाला सुनहरी

महात्मा बुद्ध ⟨ॐ⟩



इसके थोड़े ही दिनों बाद, उन दोनों का विवाह बड़ी धूमधाम से हो गया। अनन्त आकाश में स्वच्छन्द उड़ने-वाला पक्षी पींजरे में बन्द कर दिया गया। पृष्ठ २८।

घूँघट डालकर, हाथमें मोगरेके पुष्पोंसे बनाया हुआ मुकुट ले, तीनों राजकुमारोंके सम्मुख होकर सिद्धार्थके पास पहुँचती है। उस समय दण्डपाणि कहता है,—"हे सुन्दर वीर और सत्य-प्रेमी राजकुमार! स्वभुजबलसे प्राप्त किया हुआ रत्न ग्रहण कर और सुखी हो!" यशोधरा अपना चन्द्रको लज्जित करनेवाला सुन्दर मुख-कमल खोलती है और झुककर सिद्धार्थ कुमारको नमन करके, मोगरेका पुष्प-मुकुट सिद्धार्थके सिरपर रखती है। फिर वह प्रेमपूर्ण स्वरसे अपने प्रियतम से कहती है,—"मेरे हृदयके प्रियतम! मेरी ओर देखो। आजसे मैं तुम्हारी हो गई हूँ।" इस एकही वाक्यसे उसने अपने हृदयके भारको खाली किया।

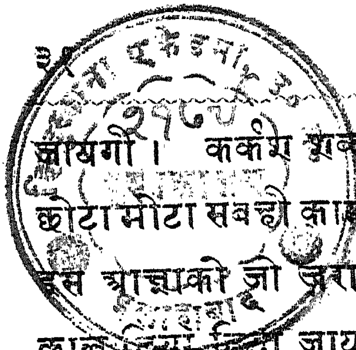
इसके थोड़े ही दिनोंके पश्चात, मेष राशिके सूर्यमें, उन दोनोंका विवाह बड़ी धूमधामसे होगया। अनन्त आकाश में स्वच्छन्द उड़नेवाला पक्षी पींजरेमें बन्द कर दिया गया। कुमारके स्वतन्त्र पैरोंमें स्वर्णकी बेड़ियाँ जड़ दी गईं।

राजाको इससे भी पूरा सन्तोष नहीं हुआ। वह अपने पुत्रको औरभी ज़ियादा विलासप्रियतामें—रागरङ्गमें—मौज मज़ेमें डुबाना चाहता था। वह चाहता था कि "वैराग्य" किस चिड़िया का नाम है, यह भी कुमार भूल जावे; इससे उसने आमोद-प्रमोदकी अनेक सामग्रियाँ तैय्यार करवाईं। उसने कुमारके लिये ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त ऋतुके अनुकूल नौ मञ्जिल, सात मञ्जिल एवं पाँच मञ्जिलके "प्रमोदभवन"

तैयार करवाये। अप्सराओं जैसी रूपवती, संगीत शास्त्रमें पार-ङ्गत वारांगनाएँ, राजकुमारका मन राग-रंगमें फँसानेके लिये, वहाँ रक्खी गयीं। यह भवन और प्रासाद उस "विश्राम-भवन" नामक बग़ीचेमें बनाये गये थे, जिसके जोड़का बग़ीचा उस समय संसारमें कहीं भी नहीं था। यहाँ भाँति भाँतिके नयन-मनोहर फव्वारे रात-दिन अपनी रुपहरी किरणें बरसाते रहते थे। अनेक तरहके प्राचीन ऐतिहासिक पुरुषोंके चित्र हर दीवार पर लगाये गये थे। मतलब यह है कि, एक ज़बरदस्त यति को संसारासक्त करनेके लिये, जो कुछ करना चाहिये वह सब कुछ किया गया था। रागमय गीत, रागमय वाद्ययन्त्र, राग-मय वार्ता, रागमय चित्र, रागमय दृश्य, रागमय पत्नी—सारांश सब कुछ इस भवनमें रागमय ही रागमय था।

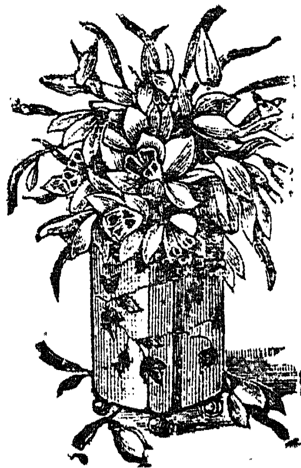
कहना न होगा कि, थोड़े समयके लिये तो भविष्यके बुद्ध—आजके सिद्धार्थ कुमार—की विरक्त आत्मा भी यशोधराके रागमें लीन होगयी।

विलासप्रियतासे—राग-रङ्गसे कुँवर अलग न हो जावे; इस कारण राजाने "विश्राम-भवन"में सबको ऐसा हुक्म दे दिया था कि, इसकी सीमामें कोई मरण—वृद्धावस्था—रोग—शोक अथवा चिन्ताकी कोई बात उच्चारण तक न करे। उसने सख़्त हुक्म देदिया था कि, सिद्धार्थको रागमय सभामें यदि कोई युवती कटाक्ष करनेमें कुछ बाक़ी रक्खेगी अथवा नाचनेमें कुछ भी हिचकेगी; तो "विश्राम-भवन"के बाहर निकाल दी



जायगी। कर्कश शब्द करनेवालोंकी मुश्कें बाँधी जायँगी। छोटा मोटा सबही काम तालमय और रागमय होना चाहिये। इस आज्ञाको जो ज़रा भी उल्लङ्घन करेगा, वह नौकरीसे निकाल दिया दिया जायगा। वृक्षके सूखे पत्तोंकी खड़खड़ाहट भी कुँवरके कानोंमें पड़ेगी, तो वन-रक्षकोंको देश-निकाला दे दिया जायगा। ऐसी ऐसी विचित्र आज्ञाओंको निकालनेके उपरान्त; कौतूहलके लिये भी कुमार "विश्राम-भवन" से बाहर न जा सके; इसके लिये तीन कोट बनाये गये थे और सबसे अन्तिम कोटका दरवाज़ा इतना मज़बूत बनाया गया था कि, बिना सौ मनुष्योंके वह खुल भी नहीं सकता था और खुलनेके समय उसकी आवाज़ आधे योजन तक पहुँचती थी। यहाँ भी विश्वासी पहरेदारोंका पहरा रक्खा गया था।

अहा। पुत्र-राग क्या नहीं कर सकता है?



चौथा अध्याय।

संन्यासी की पूर्वावस्था।

"हे जगत्! हे विश्व! मैं सुनता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं आता हूँ,"—ऐसी आवाज़ निविड़ अन्धकारमें से एकाएक आई। यशोधरा भर निद्रासे जग उठी। म्लानवदन होकर चारों ओर देखने लगी, पर अपने प्राणेशके सिवा और कोई भी उसको नज़र न पड़ा। वह सुकुमार और सुन्दर युवा मखमलके सुन्दर और नरम बिछौनेपर शयनकर रहा है। उसके भव्य मुख-कमलसे एक तरहका अलौकिक प्रकाश चमक रहा है। उसके मुँह पर दयाका भाव झलक रहा है। मध्य रात्रि होती है। शयन-गृह और बाहर शान्तिका अटल साम्राज्य है। एक बार और उस शान्तिमय अन्धकारमेंसे यह आवाज सुनाई देती है:—

"हे जगत्! हे विश्व! मैं सुनता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं आता हूँ।"

अब यशोधरा प्राणेशकी ओर नज़र करती है; क्योंकि

उसी मुख-कमलसे वे हृदयद्रावक शब्द निकल रहे हैं। वह सुन्दरी अपने प्रियतम की हवा करने लगती है और धीरे धीरे कुमार के कपाल पर हाथ फिरती है और पूछती है,— "मेरे प्राण प्यारे! आप क्या सुनते हैं? क्या जानते हैं? कहाँ जाने का वचन देते हैं? आप को क्या हो रहा है?"

सिद्धार्थ तुरन्त जग उठता है और रानी को यह जताने के लिये कि मानों कुछ हुआ ही नहीं, अपनी वाराङ्गना को पुकार कर कहता है,– "बजाओ, अच्छी तरह बजाओ। बाजेके सभी तारों को एकसा बजाना सीखो और मेरी कोमलाङ्गना यशोधरा का खूब मनोरञ्जन करो।"

वाराङ्गना सितार बजाना शुरू करती है। सितार के मधुर स्वरमें यशोधरा इतनी तल्लीन होजाती है, कि वह अपना दुःख भूल जाती है।

यह सितार एक ही समय में दो काम करता है। इसमें से जो सङ्गीत सुनाई देता है, उससे यशोधरा तो कुछ और ही बात समझती है; पर सिद्धार्थ इसमें कुछ अलौकिक—अमानुषिक—दैवी गीत सुनता है। सिद्धार्थ इस आशयका गीत सुनता है,—"हे माया के पुत्र! जहाँ आँसू बहानेवाली अनेक आँखें हमारी नज़र पड़ती हैं और जहाँ दुःख के कारण तड़फते हुए अनेक मनुष्य हमारी आँखोंके सामनेसे गुज़रते हैं, ऐसे इस विश्वमें, हम मदद करनेकी इच्छा रखनेवाले, पर शक्ति-विहीन देव यहाँसे वहाँ और वहाँसे यहाँ भटकते फिरते हैं। जगत्के

उद्धारके लिये जन्मे हुए महाभाग! हमें भटकते हुए देख कर आप गुलाबी निद्रा में क्यों मग्न हैं? दुःखी जगत् आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। बिना आँखोंका, ठोकर खाता हुआ विश्व, बड़ी आतुरतासे, आपका हाथ माँग रहा है। उठो, जाग्रत होओ, सुखाभिलाषी मनुष्योंको सुख का स्थल बताओ। जरा, व्याधि और दुःखसे पीड़ित तीनों ही भुवनों को जीवनका रहस्य समझाओ। अनाथ मनुष्यों के नाथ बनकर, उन्हें जीवन की क्षणभङ्गुरता समझाकर, अमर जीवनमें उनका प्र-वेश कराओ। मनुष्य-जाति पाकर, प्रेमके लिये राज्यका त्याग करो। पीड़ित जनताओं की दयाके लिये रागका त्याग करो। मुक्ति की इच्छा करनेवाले विश्व के कल्याण के लिये, सर्वस्वका त्याग करो। हम इस वीणा के तार द्वारा सन्देशा कहलाते हैं। हम देवों को सान्त्वना प्रदान करने के लिये, हे बुद्ध भगवान्! जाग्रत होओ!

"सहाय करो, सहाय करो" ओ देव! तुम्हें सोते हुए देखकर कालदेवने बड़ा ऊधम मचा रक्खा है। लम्बी आयुष्य वाले हम देव भी, पुण्य क्षीण होजाने से, कालदेव की शरण होगये हैं। अतएव हे मृत्युञ्जय! कालदेव पर विजय प्राप्त करने की विद्या संसार को सिखाओ। हे वीर! उठो, तय्यार हो जाओ, जगत् के उद्धारके लिये बहुत वर्ष पूर्वकी की हुई प्रतिज्ञा याद करो। उस काम के लिये अब अनुकूल समय आपहुँचा है। उठो, चेतो, प्रमाद को छोड़ो और

पूर्वके बुद्धों की तरह जगत् के कल्याण के लिये निकल जाओ।"

बाजे में से निकलनेवाला, उपरोक्त अर्थका सूचक, यह गीत पूरा हुआ। कुमार की रग रग में इस गीत के शब्द पैठ गये। उसके अन्त:करणमें ये शब्द चित्रित होगये। उसके सोये हुए प्राण जाग गये। जीवन की प्रथम प्रतिज्ञा का उसे स्मरण हो आया। उसके जीवन का उद्देश, ज्वलन्त मूर्त्तिरूप होकर, उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ। उसके अङ्ग प्रत्यंगमें वैराग्य-भावना व्याप्त होगई।

अब सिद्धार्थ कुमार ने निश्चय कर लिया,—"प्रकाश खोजने के लिये, जगत् को दुःखमुक्त करने के लिये, बाहर निकलना ज़रूरी है।"

इन सब घटनाओं से संसारके सब मनुष्य, यहाँ तक कि स्वयं उसकी प्रेम-मूर्त्ति यशोधरा भी अनभिज्ञ थी; क्योंकि यशोधरा मध्य-रात्रि की घटना को ताज़ी निद्रा और वीणाके मदमाते प्रवाहमें डुबोकर जाग्रत हुई थी।

दिन पर दिन बीतने लगे। पुनः कुँवर की वैराग्य-वृत्ति को पुष्टि प्रदान करनेवाला एक अवसर और आगया।

एक दिन सन्ध्या के समय एक दासी सुन्दर-सुन्दर शहरों की, दैवी अश्वों की, रमणीय ऊँचे ऊँचे पर्वतों की, खर-खर बहनेवाली नदियोंकी एवं जुदे-जुदे स्वभाव के मनुष्यों की अत्यन्त मनोरञ्जक बातें कुमार को सुना रही थी। इन

बातों को सुनकर, बाहर की दुनिया देखने की इच्छा कुमार को हुई। अतएव कुमारने अपने सारथी छन्दक को हुक्म दिया कि, कल प्रात:काल रथ जोतकर तय्यार रखना।

छन्दक ने यह ख़बर राजाको पहुँचायी। राजा ने नगर में डोंडी पिटवादी—"कल सुबह के पहले सब रास्ते और आँगन साफ़ रक्खे जावें। कोई भी अरम्य दृश्य अथवा पदार्थ मार्गमें दीख न पड़े, इस बात की पूरी सावधानी रक्खी जावे। मकानोंके आगेके हिस्से रंगसे रँगे जावें। वृद्ध, अपङ्ग, रोगी, कोई बाहर न निकले।"

राजाकी इस आज्ञाको सिरपर धर, सब रास्ते साफ किये गये। भिश्तियोंने रास्तोंपर छिड़काव किया। सब प्रजा-जन राजाज्ञा पालन करनेके लिये, बड़े उत्साहपूर्वक, तन-मन धनसे यत्न करने लगे। घर घर नये नये तोरण बाँधे गये। घरोंकी दीवारोंके चित्रों की धूल साफ़ की गयी और उनपर नया रङ्ग लगाया गया। देव-मन्दिर भी सुसज्जित किये गये। देखते ही देखते, नगरी स्वर्गके तुल्य सुन्दर बना दी गई।

दूसरे दिन राजकुमार, रथ में बैठकर, नगर का सौन्दर्य्य देखनेके लिये बाहर निकला। उस समय वह क्या देखता है कि, सबके मुखपर आनन्द छा रहा है। सब मनुष्य हर्ष-पूर्व्वक राजकुमार का अभिनन्दन कर रहे हैं। सब नगर-निवासी भाँति भाँति की नयन-मनोहर पोशाकें पहने हुए हैं! राजकुमार यह सब देखकर बोल उठा,—"अहा! यह दुनिया

कितनी सुन्दर है! मुझे यह बहुत प्यारी लगती है! अहा! ये लोग कैसे सुखी दीखते हैं! मैंने इनके लिये भलाईका ऐसा क्या काम किया है, कि ये मेरे प्रति इतनी प्रीति दिखा रहे हैं? ऐसे राज्यमें राज करना कितना सुखकारी है! मेरे पास बहुतसी फालतू चीजें रक्खी हुई हैं। यदि लोग उनसे किसी तरह का लाभ उठा सकें, तो मैं उन्हें दे डालूँ। छन्दक! रथ को आगे चला कि, जिससे हमलोग ऐसे सुन्दर शहर की शोभा देख सकें।"

लोगोंके झुण्ड के झुण्ड राजकुमार के रथ के आगे जमा हो गये और जय जयकार से उसका अभिनन्दन करने लगे। कितने ही लोगोंने राजकुमार के गलेमें पुष्प-हार पहनाकर उसका अभिनन्दन किया। इस तरह चहुँ ओर आनन्द ही आनन्द छा रहा था। कुमार भी आनन्द-सागरमें तैर रहा था कि, इतनेमें फटे टूटे वस्त्र पहने हुए एक वृद्ध मनुष्य वहाँ आ पहुँचा। उसकी चमड़ी में झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। बुढ़ापेके कारण उसकी कमर झुक गई थी। आँखोंमें उसके खड्डे पड़ गये थे। उसके अवयव धूजते थे। यद्यपि वह लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनतासे चल रहा था; तोभी इधर उधर धक्के खाता था। उसके मुँह से दुःखपूर्ण निःश्वास निकल रहे थे! ऐसी दशा में वह वृद्ध मनुष्य बीचमें जाकर बोला,—"हे साधु पुरुषो! मुझे भिक्षा दो; मुझे भिक्षा दो; आज-कलमें, मै मरनेवाला हूँ।" इतने शब्द बोलते ही बोलते

उसके मुँहमें कफ आने लगा और वह ज़ियादा बोल न सका। भिक्षाके लिये उसने अपना हाथ ज्योंही लम्बा किया कि आस पासके लोग उसे निकालनेका यत्न करने लगे। सब कहने लगे,—"अरे बुड्ढे! दूर हो! दूर हो! कुमार साहबकी दृष्टि से दूर हो!"

कुमार की दृष्टि एवं कान शीघ्रही उस ओर आकर्षित हुए। उसने अपने सारथी से पूछा,—"यह मनुष्य कौन है? यह इतना क्यों थक गया है? यह इतना शोकाकुल क्यों है? क्या मनुष्य ऐसे शरीर के साथ भी जन्म लेते हैं? यह कहता है कि, कल में मर जाऊँगा—इसका क्या मतलब?" सारथी ने जवाब दिया,—"यह और कोई नहीं है,एक वृद्ध मनुष्य है। ७० वर्ष के पहले इसकी कमर सीधी थी, इसकी आँखें चमकती थीं, शरीर सुन्दर दीखता था; पर अब यह वृद्ध होगया है। जरा—बुढ़ापेने इसके शरीरका बल हरण कर लिया है—इसका रस चूस लिया है—इसके दीपक में से तेल जल गया है और उसकी बत्ती बड़ी मन्दता से जल रही है। यह वृद्धावस्था इसी प्रकार की है; पर इस विषय की बात आप क्यों कर रहे हैं?"

कुमारने पूछा,—"क्या सभी मनुष्यों की ऐसी ही दशा होती है?"

सारथीने जवाब दिया,—"यदि दूसरे मनुष्य भी ज़ियादा वर्षों तक जीवें, तो उनकी भी ऐसी ही दशा हो।"

कुमारने फिर पूछा,—"यदि मैं भी अधिक वर्षों तक जीऊँ, तो क्या मेरी और यशोधरा की भी ऐसी ही दशा होगी ?" सारथीने जवाब दिया,—"वृद्धावस्था राजा और रङ्क सबको घेरती है। आप, आपके श्री पिताजी, आपकी प्रियतमा, आपके ज्ञातिजन और बन्धुवर्ग सब उसके अधीन हैं ; कोई उससे मुक्त नहीं हो सकता।"

कुमार कहने लगा,—"हमलोग वास्तव में बड़े मूर्ख हैं, जो यौवनसे मदमत्त होकर शरीरके भावी परिणामों पर ध्यान नहीं देते ! सारथी ! अब रथ को जल्दी पीछे फिरा।"

सारथीने तुरन्त ही रथ फिराया और कुमार म्लान मुखसे अपने महलमें प्रविष्ट हुआ। उस संध्याको उसने कुछ भी खाया पिया नहीं। नृत्यकारों और गायकों ने उसके मनोरञ्जनके लिये अनेक यत्न किये, पर उसके वैराग्य-रञ्जित मन पर कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्तमें यशोधरा उसके चरणों में गिरती है और प्रार्थना करती है,—"हे नाथ ! क्या आप को मुझ दासी से विश्रान्ति नहीं मिलती ? क्यों आप मुझ दासीसे बोलने की कृपा नहीं करते ?"

अपनी प्राणप्यारी पत्नीकी ओर दृष्टि करके कुमार बोला, "विश्रान्ति ! ए मेरी युवावस्था की विश्रान्ति ! तुझ ललिताङ्गिनी की मौजूदगीमें सिवा विश्रान्तिके और क्या है ? तथापि ए मुग्धे ! यह अङ्ग-लालित्य एक दिन नाश होनेवाला है। ये विचार मेरी विश्रान्तिको लूटे लेते हैं। यह यौवन-

एक दिन झुकी हुई कमर वाली वृद्धावस्थामें बदल जानेवाला है, यह ख़याल मुझे चिन्तातुर करता है एवं शोक-सागरमें डुबाये देता है। क्या तू एक दिन वृद्धा होगी? तेरे गुलाब सरीखे सुन्दर मुख-कमलपर झुर्रियाँ पड़ी हुई देखकर, क्या मेरा हृदय टूक टूक नहीं हो जायगा? क्या वृद्धवस्थाको रोकनेवाला संसारमें कोई इलाज ही नहीं है? जो संसार अपने लिये इतने सुखोंका भण्डार है, क्या उसमें वृद्धावस्थाको रोकनेकी कोई रामवाण दवा नहीं है? प्रिये! अब तू आराम कर, मुझे अपने मनोरञ्जनमें घूमने दे—वृद्धावस्थाको रोकनेवाली दवा ढूँढ़ने दे, कि जिससे संसार शाश्वत सुख प्राप्त कर सके।"

भोली भाली मुग्धा इस तत्वज्ञानको कुछ भी नहीं समझ सकी। वह अधिकाधिक चिन्तित होने लगी। विचार ही विचारमें वह निद्रावश होगयी। कुमार सारी रात मानसिक क्षेत्रमें, वृद्धावस्था को रोकनेवाली और युवावस्थाको क़ायम रखनेवाली दवाके लिये, घूमता रहा।

प्रात:काल होतेही कुमारने राजा से कहला भेजा,—"मैं केवल एक ही सारथीके साथ नगर देखनेके लिये जाना चाहता हूँ; अतएव कृपाकरके पहले जैसी तय्यारी किये बिना ही मुझे नगर देखनेकी अनुमति प्रदान कीजिये।"

राजाको यह बात अच्छी न लगी, पर कुमारको किसी-तरह नाराज़ करना भी उसने उचित न समझा। अतएव, अन्तमें उसने ज्यों त्यों कर अनुमति देदी।

कुमारने सोचा कि पहले ख़बर देनेसे लोग सुन्दर ही दृश्यको सामने लाते हैं, इससे संसारकी सच्ची हालत नहीं जानी जा सकती; अतएव बिना किसी तरहकी ख़बर दिये हुए अकेले ही जाकर इस बातका अनुभव करना चाहिये कि, लोग अपनी सामान्य अवस्थामें किस तरह रहते हैं और संसार का स्वरूप क्या है? कुमार और सारथी दोनों पैदल ही निकल पड़े।

वे एक गलीसे दूसरी गलीमें—एक सड़कसे दूसरी सड़क पर—अनेक दृश्योंको देखते हुए घूमते रहे। इनके कानमें यह आवाज़ आयी,—"ओ दयालु पुरुषो! मेरी मदद करो—मदद करो, मुझे उठाओ, नहीं तो घर पहुँचनेके पहले ही मैं मर जाऊँगा।"

कुमार और सारथी तुरन्त ही जिस ओरसे आवाज़ आयी थी उस ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर वे क्या देखते हैं कि, एक मनुष्य रोग पीड़ित धूलमें तड़फ रहा है और ज़ोर ज़ोरसे आर्त्तनाद कर रहा है। उसके सारे शरीर पर सफेद सफेद घाव हैं और उन घावोंके छिलनेसे उसे असीम दुःख हो रहा है। झुण्डके झुण्ड लोग उसके आस-पास खड़े हुए हैं; पर कोई उसके पास नहीं जाता है—कोई उसकी सहायता के लिये आगे हाथ नहीं बढ़ाता है।

जब सिद्धार्थ कुमारने यह दयाजनक दृश्य देखा, तब उसके सकरुण नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। वह

तुरन्त ही उस बीमारके पास जा बैठा और उसे आश्वासन देकर उस पर अपना कोमल हाथ फेरने और पूछने लगा:—

"भाई ! कह, तुझे क्या हुआ है ? तुझपर क्या आपत्ति आकर पड़ी है ? तू खड़ा क्यों नहीं हो सकता ? अरे छन्दक ! यह बेचारा क्यों रो रहा है ? क्यों निःश्वास फेंक रहा है ?"

छन्दकने कहा,—"अन्नदाता ! यह मनुष्य रोगसे पीड़ित है । बीमारीका सताया हुआ है । इसके रक्ताभिसरणकी गति मन्द पड़गई है । इसके हृदयका स्पन्दन मन्द होगया है । इसके स्नायु निर्बल होगये हैं । इसके शरीरकी सन्धियाँ टूट गई हैं । दुष्ट बीमारीके कारण यह रूपहीन और शक्तिहीन होगया है । थोड़े समयमें यह मर जायगा । हे कृपानाथ ! इसे छूतकी बीमारी होगई है ; अतएव आप इसको बारबार स्पर्श मत कीजिये ।"

कुमार सिद्धार्थ अपने सारथीसे पूछने लगा,—"क्या इस रोगवाला कोई अन्य भी मनुष्य है ? यदि मुझे यह रोग होजावे, तो क्या मुझे भी इसी तरह तड़फना पड़े ।"

सारथीने जवाब दिया,—"स्वामिन् ! बीमारी सबको यकसाँ होती है । सबको उससे एकसा कष्ट उठाना पड़ता है । क्या राजा, क्या रंक, क्या श्रीमान्, क्या ग़रीब, क्या साधु, क्या संसारी, क्या युवा, क्या वृद्ध, सभी पर इसका असर समान रूपसे होता है ।"

कुमारने इसपर सारथीसे पूछा,—"क्या मनुष्योंको हमेशा रोगका भय बना रहता है ?"

सारथीने प्रत्युत्तर दिया,—"अन्नदाता सचमुच मनुष्य हमेशा ही रोगके साम्राज्यमें रहता है। कोई नहीं कह सकता कि वह कब तकलीफ़ दे उठे। कोई नहीं कह सकता कि, शामका आरोग्य दशामें सोया हुआ मनुष्य सवेरे आरोग्य दशामें उठेगा।"

तब कुमारने पूछा,—"इसके दुःखदायक पञ्जेमें पड़नेके बाद क्या मनुष्य क्षण भरके लिये भी सुख की नींद सो सकता होगा ?"

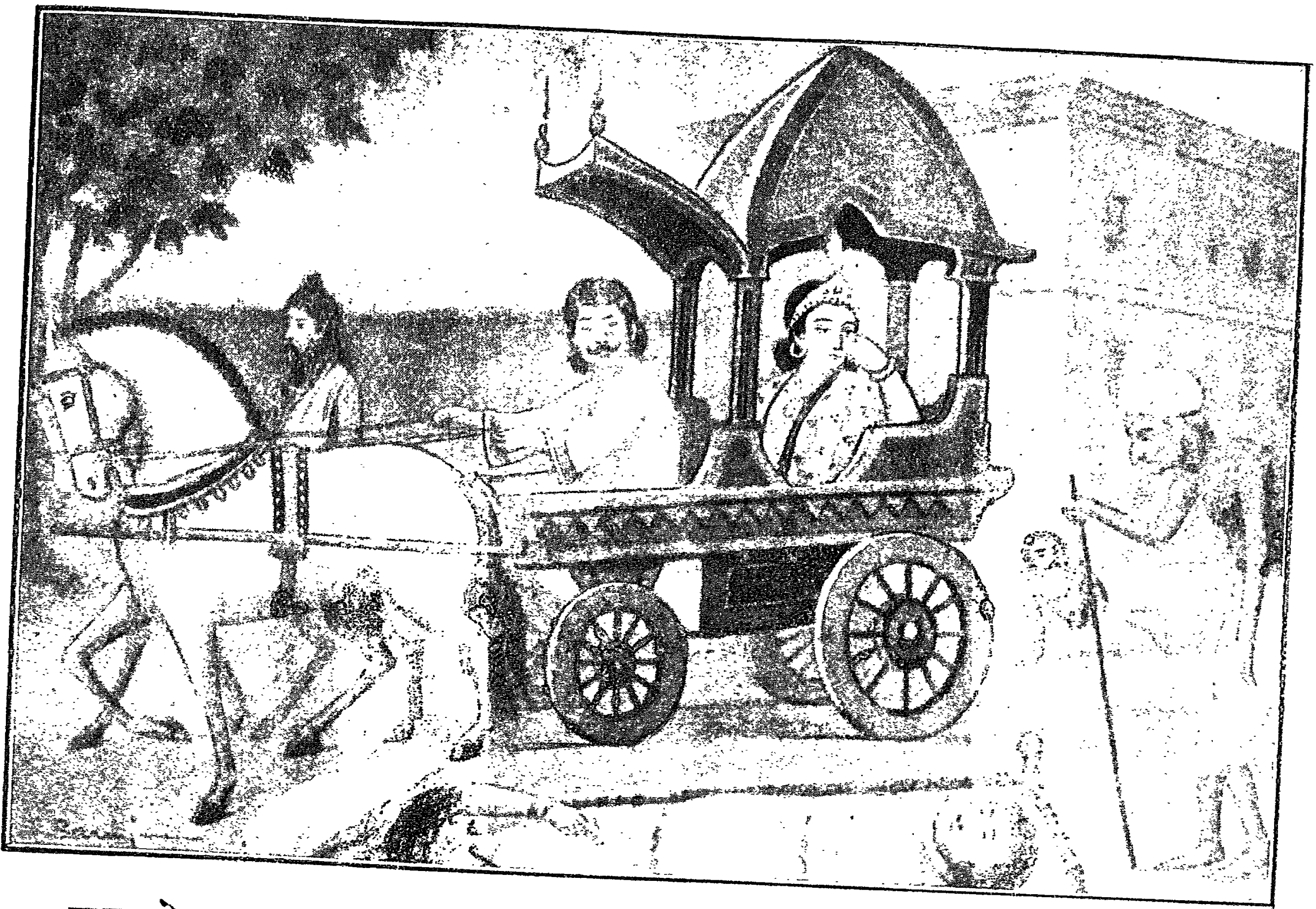
इस पर सारथीने जवाब दिया,—"स्वामिन्! ऐसी कोई बात नहीं। सौभाग्यवश लोग इतने ज्ञानी नहीं हैं कि, रोगके भयसे आहार, निद्रा और विषय सुखसे अलग रहें। रोगका भय जितना तीव्र है, उतनाही तीव्र लोगोंका विषय-सुखकी ओर अनुराग है। यह अनुराग लोगोंको रोगका स्मरण तक नहीं होने देता।"

कुमार अपनी गोदमें पड़े हुए पीड़ित मनुष्यकी ओर देखता है और उससे पूछता है,—"क्यों भाई, क्या तुझे यह मालूम था कि तू इस दुःखसे पीड़ित होगा ?"

इस पर वह रोगजर्ज्जरित मनुष्य उत्तर देता है,—"हे दयालु पुरुष! कृपया, यह बात मुझसे मत पूछो। मेरी दुःखपूर्ण कहानी सुनकर आपकी दयालु आत्माको बड़ा दु.ख होगा।"

इसपर कुमारने आग्रह किया तो उसने कहा,—"हे दयालु पुरुष! यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो लो सुनो,—"यह रोग मुझे होगा, ऐसी महान् दुःखदाई बीमारीसे मैं पीड़ित होऊँगा, ऐसी मुझे स्वप्नमें भी कल्पना न थी। हज़ारों मनुष्योंको रोग-पीड़ित देखकर मैं ज़रा भी भय नहीं करता था। मुझे विश्वास था कि, मैं सदा शुद्ध और आरोग्य रहूँगा। इसीसे मैंने मृत्युके लिये कुछ भी तय्यारी न की। एक गुप्त आक्रमण करनेवाले शत्रुके फन्देमें फँसा हुआ मनुष्य जिस तरह अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ होता है, (क्योंकि वह अपनी तलवार निकालता है, उसके पहले ही शत्रुके हाथमें अपनेको जकड़ा हुआ पाता है) उसी तरह मैं मृत्युके लिये तैयारी करूँ, इसके पहले ही दुष्ट मृगीने आकर मुझे धर दबाया। अब मैं बिना किसी प्रकार की तय्यारीके, शीघ्र ही,मृत्युके अधीन होऊँगा। हे दीनबन्धो! मुझपर दया कीजिये। मुझ पापीका अपराध क्षमा कीजिये।" यों कहता-कहता वह गला फाड़कर रोने लगा और असीम दुःखके कारण बेहोश हो गया। इसी समय पास ही से मनुष्योंका एक दल आर्त्तनाद करता हुआ नदीकी ओर जाता हुआ दिखाई दिया। उस दलसे "राम राम सत्य है, सत्य बोले गत है' की आवाज़ आ रही थी। एक मुर्देका लिये हुए यह दल श्मशानको जा रहा था।

इस दलकी आवाज़से कुमारकी गोदमें सोया हुआ मृगी रोगसे पीड़ित मनुष्य जग उठा और यह जानकर कि मेरी भी



कुमारने पूछा—"क्या सभी मनुष्योंकी ऐसी ही दशा होती है ?"

थोड़ी ही देरमें ऐसी ही दशा होनेवाली है, चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा—"अरे मुझे ले चलो! यमराज मुझे बुला रहा है!" बस, यही कहते-कहते उसका दम निकल गया। कुमार पर इस बातका बड़ा ही गहरा असर पड़ा। कुमार एकचित्त होकर सोचने लगा,—"मानव जाति ऐसे भयङ्कर दुःखोंसे किस तरह बच सकती है ?"

इतने ही में उस मृत पुरुषके सम्बन्धी वहाँ आते हैं और कुमार उन्हें उस मृत पुरुषका शव सिपूर्द करता है। इसके बाद कुमार वहाँ से चल देता है। सारथी भी उसके साथ-साथ जाता है।

शहर छोड़कर वे थोड़ी ही दूर पहुँचे होंगे कि, एक विशाल वट वृक्ष उनकी नज़र पड़ा। उसकी छायामें वे बैठ गये। अपनी तरफ एक विचित्र पुरुष को आता हुआ देखकर, कुमार सारथीसे पूछता है,—"भगवाँ वस्त्र पहने हुए, हाथमें विचित्र प्रकार का पात्र लिये हुए, यह कौन पुरुष आ रहा है?"

सारथी उत्तर देता है,—"दीनबन्धो! यह संन्यासी है। इसने सब प्रकार की इच्छाओंका त्याग कर दिया है। यह तपस्वी का सा जीवन व्यतीत करता है। भिक्षासे अपना निर्वाह करता है। शान्तिसे रहता हुआ, यह मनुष्य हमेशा आन्तरिक विचारोंमें मग्न रहता है। देखिये; इसकी भव्य मुखमुद्रा कितनी गम्भीर और विचारोंमें तल्लीन जान पड़ती है।"

इतने में संन्यासी वहाँ आ पहुँचता है और एकान्त में

जाकर एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर समाधिस्थ हो जाता है।

कुमार इस संन्यासी की ओर देखकर मन-ही-मन कहने लगता है,—"पण्डित हमेशा संन्यासियोंकी प्रशंसा करते हैं, सो ठीक है। सचमुच, संन्याससे अपना और पराया हित होता है। शाश्वत् जीवन, सुख तथा अमरत्व प्राप्त करने का यही मार्ग है। जिस यौवन को जरा का भय है, जिस आरोग्य को व्याधिका भय है, जिस समृद्धिको दरिद्रका भय है, जिस शरीरको मृत्युका भय है; उस आरोग्य उस समृद्धि और उस शरीर के पीछे लुब्ध होकर रहना कितनी मूर्खता—कितनी अज्ञानता और कितनी नासमझी है!"

इस समय उसके सकरुण नेत्रों से दिव्य दया के आँसू बह रहे थे। कभी वह आकाश की ओर निहारता था, तो कभी ज़मीन की ओर दृष्टि करता था। उसके मुखमण्डल को ओर देखने से ऐसा मालूम होता था, मानों वह कोई नवीन प्रकाश लाने की धुन में है। उसके मुखमण्डल पर, मनुष्य-जाति का अपूर्व प्रेम, उनके कल्याण करने की भावना का दिव्य भाव, साफ साफ झलकता था। अन्तमें आशा—कोई नवीन आशा—उसकी आँखों में प्रकाशित हो उठी और वह यह शब्द बोल उठा—

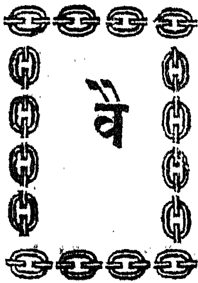
"ऐ दुखी जगत्! ओ मेरी पहचान एवं बेपहचानके बन्धुओ! तुम और मैं दुःख एवं मृत्यु के पञ्जे में पड़े हुए हैं।

अखिल वसुधा को जो दुःख सहना पड़ता है, उसकी गम्भीरता को जब मैं समझता हूँ, सचमुच उसके लिये मेरा हृदय फटता है। जगत्के सुखोंकी दुःख-गर्भितता, स्थूल आनन्द-अनित्यता और पदार्थोंकी क्षणभङ्गुरता का अनुभव मैं कर रहा हूँ। जब सुखका अन्त दुःखमें होता है, जब युवावस्था का अन्त वृद्धावस्था में होता है और जब प्रिय मनुष्यों का अन्त मृत्युमें होता है; तब यह प्रश्न सचमुच उठता है कि क्या यह जीवन जीनेके योग्य है?' मैं भी आज तक जगत् के मायामय प्रकाशमें निमग्न था। मैंने इस जीवनमें सुख मान रक्खा था। मैं भी जीवनको जीने योग्य और आनन्दमय मान रहा था; पर अब मुझे अन्धकारमें रखनेवाले परदे फट गये हैं। मैं भी तुम्हारे ही सरीखा जरा, मरण और रोगके अधीन मनुष्य हूँ। लोग देवोंकी प्रार्थना करते है, पर वे भी अपने ही समान मृत्यु के अधीन हैं; तो फिर वे अपनेको किस तरह अमरत्व प्रदान कर सकते हैं? सचमुच, आज मेरे नेत्र खुल गये हैं। अब मुझे विशेष देखनेकी आवश्यकता नहीं। हे दुःखी जगत्! तेरा हर एक दुःख मेरा दुःख है। मैं उसे दूर करनेके लिये प्रयत्न करूँगा—ज़रूर प्रयत्न करूँगा।



पाँचवाँ अध्याय

गृह-त्यागकी तय्यारियाँ।



राग्यकी अग्नि प्रज्वलित हुई—खूब ही प्रज्वलित हुई। सिद्धार्थ उक्त बड़के वृक्षके नीचेसे उठकर अपने महलमें प्रविष्ट हो चुका है, पर उसके मनकी वैराग्य-अग्नि अभी तक मन्द नहीं हुई है। जिस तरह रूईका ढेर और बारूदखानेका फलीता तैय्यार होते हुए भी एक छोटीसी दियासलाईके बिना सब तय्यारी बेकाम होती है; उसी तरह सिद्धार्थ कुमारके प्रेमी, दयालु, परोपकारी संस्कारी हृदयको किसी दियासलाईके तुल्य घटना ही की ज़रूरत थी। अनेक दुःखमय घटनाओंको देखनेसे उसके रूई समान हृदयमें वैराग्यकी अग्नि प्रज्वलित होने लगी।

पर इस महात्माका वैराग्य प्रेममय था। इसे अपने दुःखसे वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ था, पर संसारके दुःखसे हुआ था। यह संसार से प्रेम करता था। प्रेमसे वैराग्य उत्पन्न होता है, यह बात शायद वैराग्यका उल्टा अर्थ समझनेवाले नहीं मानेंगे। पर जब इन संशयात्माओंको "प्रेम" और "राग" का फ़र्क़ मालूम हो जायगा, तब उनका संशय

आप दूर हो जायगा। सच है, वैराग्य रागरहित दशाका ही नाम है ; अतएव रागमय दशा वैराग्य नहीं कही जा सकती; पर प्रेममें वैराग्य हो सकता है ; क्योंकि राग और प्रेम यह भिन्न तत्त्व हैं। राग स्वार्थी चीज़ है, प्रेम निःस्वार्थी है। "राग" नाशवन्त की ओर होता है, "प्रेम" अमर तत्त्व की ओर होता है। "राग" के रूपान्तर होते रहते हैं, "प्रेम" अचल है। "राग" दुःख को उत्पन्न करता है। "प्रेम" आनन्दको उत्पन्न करता है। राग तेलके समान है कि जिसमें सुगन्ध तो नहीं होती है, पर कपड़े पर दाग डालने का गुण उस में है। प्रेम अतरके समान है कि थोड़े परिमाण में होते हुए भी चहुँ ओर सुगन्ध फैलाता है। राग एक रङ्ग है और यह रङ्ग चाहे जैसा पक्का हो, तोभी "काल"की खुराक है। "प्रेम" रङ्गरहित मूल स्थिति है कि, जिसे काल स्पर्श तक नहीं कर सकता। राग ईर्षाका उत्पन्न करता है, द्वेष का जनक है, धिक्कार का पृष्टपोषक है। "प्रेम" इन सब बलाओंसे दूर है। यह दया, सहायता और स्वस्वभाव का पृष्टपोषक है।

सिद्धार्थके वैराग्यका कारण संसार से उसका निष्कारण प्रेम ही था ; इसलिये घर—काम—भोग—समृद्धि—सत्ता इन सब "राग" के पदार्थोंसे उसने अपना मन हटा लिया था। संसारको कल्याण का रास्ता बताने होमें उसका प्रेम प्रदर्शित होता था।

कुमारका मन मूल हीसे वैरागी था। बाल्यावस्था में खिलौने उसे आनन्द प्रदान नहीं कर सकते थे। यौवनमें यशोधराके संसर्गके कारण घड़ी भर उसका मन रागकी ओर आकर्षित हुआ था सही ; पर कुछ घटनाओंने उसको वैराग्य-भावना फिरसे जाग्रत कर दी। कोयलोंके ऊपर की राख कुछ देरके लिये उड़ गयी और फिर वैराग्यकी अग्नि बड़े ज़ोरके साथ प्रज्वलित हो उठी। उसके मनमें प्रबल आन्दोलन हो रहा था। संसारका त्याग करके, एकान्तमें जाकर, व्याधि रोग और मृत्युसे मुक्ति पानेकी उच्चसे उच्च भावना उसके हृदयमें उठ रही थी। जबसे उसने पहले-ही-पहल भिक्षुकको—श्रमणको—संन्यासीको देखा था, तब ही से वैसा होनेकी महताकांक्षा उसके हृदयमें लग रही थी। श्रमणके दर्शनोंसे पूर्वके बुद्धोंका उसे स्मरण हो आया।

संसार त्याग करके संन्यासी होनेमें पिता, मासी और पत्नीका प्रेम अवरोधक होता था। कुमार मन-ही-मन विचारता था, कि ऐसे प्रेमी पिताको वृद्धावस्थामें कैसे छोड़ कर चला जाऊँ ? माता-तुल्य गौतमीको मेरे चले जानेसे कितना दुःख होगा ? मेरे ही आधार पर जीनेवाली और मुझे ही सर्वस्व माननेवाली यशोधराकी क्या दशा होगी ? इन सब को दुःखमय दशामें छोड़कर कैसे जाऊँ ? पर साथ ही दूसरा विचार उसके मनमें यह उठता था कि लोग जरा, व्याधि और मृत्युके अधीन हैं—दुःखी हैं। कोई उनको मार्ग बतानेवाला

नहीं। देशमें धर्मके नामसे अधर्म फैलाया जाता है। लोग देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिये, अज्ञानतासे, यज्ञमें पशुओंका संहार कर रहे हैं और इस तरह दुःखरूपी अग्निमें और घृत डालते हैं। ऐसी दशामें मुझे मनुष्य-जातिका उद्धार करना ही चाहिये।

सिद्धार्थके मनकी वैराग्यमय और अनुकम्पामय स्थिति अब इतनी दृढ़ होगई थी, कि अब उसका मत डिगना किसी तरह सम्भव नहीं था। कोई उसके दृढ़ संकल्पको ढीला नहीं कर सकता था। उसने अब यह बात भली भाँति समझ ली थी कि, यही जीवनका महाव्रत है। स्वर्गीय बलसे वह इस काममें प्रवृत्त होना चाहता था। वह अकेला ही संसार छोड़ कर चला जाता, पर पिताकी आज्ञा बिना उसने ऐसा करना किसी तरह उचित नहीं समझा। अन्तमें वह अपने पिताके पास जाता है और नम्र भावसे अपने हार्दिक भावोंको प्रकट करता है।

पुत्रवत्सल पिताने कहा,—"संसारका त्याग!" ये शब्द तू अपने मुँहसे मत बोल। बेटा! तेरे लिये अभी संन्यासी होनेका समय नहीं आया है। अभी तेरी उम्र परिपक्व नहीं हुई है। तू युवा है, तेरी रगोंमें गरम खून है। मेरे आँखोंके तारे, यह उम्र योगीके वेशमें शोभा नहीं देती। पुष्प का आघात भी जिस शरीरको सहन नहीं होता है, वह भिखारीकी पोशाकको किस तरह सहन कर सकता है? तू तो

बेटा ! राज्यकी लगाम पकड़ और मुझे संन्यासी होने दे । तू संसारके काममें निपुण हो, कीर्त्ति प्राप्त कर, उसके बाद चाहे तो आनन्दपूर्वक गृहस्थाश्रमका त्याग करना ।"

इस पर कुमारने विनयपूर्वक अपने पितासे प्रार्थनाकी कि—"हे पिताजी ! यदि आप चार तरहके वरदान दे सकें, तो मैं संसार त्यागनेका विचार छोड़ दूँ । बिना मृत्युका जीवन, बिना वृद्धावस्था यौवन, बिना नाशके जगत् के पदार्थ, बिना व्याधिके आरोग्य । पिता जी ! यदि आप मुझे यह चार वरदान न दे सकते हों, तो मैं विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जाने दीजिए । संसार छोड़ने की अनुमति मुझे प्रदान कीजिए । आपका पुत्र एक जलते हुए घरमें रहता है, उसके त्याग करनेकी अनुमति क्या आप सरीखे पुत्रवत्सल पिता न देंगे ? ज़रूर देंगे । सचमुच जरा, मृत्यु और व्याधि से हमलोग घिरे हुए हैं, उनसे छुटकारा पाने का मार्ग ढूँढ-नेकी अनुमति मुझे प्रदान करो, कि जिससे मैं विश्वके कल्याणका मार्ग खोज निकालूँ ।"

इसपर राजाने कुछ भी जवाब नहीं दिया । पुत्र अपने निश्चयमें दृढ़ है; अतएव ज़ियादा कहनेमें कुछ लाभ नहीं, ऐसा मानकर राजाने मौन धारण कर लिया ; पर उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बरसने लगीं । पिताको ऐसी स्थितिमें कुछ विशेष कहना, उनके विशेष दुःखका कारण होगा, ऐसा समझ कर कुमार अपने विश्राम-भवनकी ओर चला गया ।

विश्राम-भवनमें जब कुमार आया, तब यशोधराने और उसकी दासियोंने कुमारको खुश करनेके लिये खूब प्रयत्न किये, पर आज कुमारका चेहरा कुछ और ही रङ्ग ढँगका दीख पड़ता था। आज कोई भी उसे खुश करनेमें समर्थ नहीं था। यशोधराने उसके मनको सान्त्वना प्रदान करनेके लिये कई यत्न किये, पर असफल हुए। अन्तमें वह निराश होकर सो गयी। आधीरातके ऊपर हुई होगी कि, यशोधरा एक भयानक स्वप्नके देखनेसे घबरा उठी और बड़े ज़ोरसे चिल्लाने लगी। तब सिद्धार्थ कुमार उसे बड़े प्रेमसे मधुर शब्दोंमें यों सान्त्वना देने लगा,—"शान्त हो! मेरी प्राण-प्यारी! शान्त हो! तू पापी नहीं, पर पुण्यात्मा है; क्योंकि पुण्यात्मा ही ऐसा स्वप्न देख सकते हैं। हो सकता है, कि तेरा यह स्वप्न भविष्यमें होनेवाली घटनाओंका सूचक हो। शायद देवोंके आसन विचलित होगये हों, शायद सारा विश्व सहायता-प्राप्तिके समीप मार्गमें हो और तुझ पर चाहे जैसी विपत्ति आपड़े, तोभी यह विश्वास रखना कि मैं तुझे चाहता था और चाहता हूँ। इस दुःखी जगत्की किस तरह रक्षा की जाय, इसके लिये कितने ही माससे मैं रात-दिन विचार कर रहा हूँ, यह बात भी तू अच्छी तरह जानती है। जो मेरा आत्मा दूसरे अजान आत्माओंके लिये व्यथित है और मैं अपने दुःखोंके लिये नहीं, पर दूसरोंके दुःखोंके लिये दुःखी होता हूँ, तो हे प्रिये! मेरे उच्च विचार तेरे कल्याणके लिये भी

कितने कामके होंगे, इसका तू ही विचार कर। इसके बाद चाहे जो हो, पर हे प्रिये! यह विश्वास रखना कि मैं तुझे चाहता था और चाहता हूँ। जो वस्तु मैं सारे विश्व के लिये ढूँढ़ रहा हूँ, उसकी खोज तेरे लिये भी विशेष रीति से कर रहा हूँ। हे प्रिये! यदि तुझ पर किसी तरह की विपत्ति आ पड़े और तेरी विपत्तिसे दूसरों को शान्ति प्राप्त होती हो, तो तू इस विचारसे आश्वासन प्राप्त करना। दूसरे लोग जिन बातों को नहीं जानते हैं, उन्हें मैं तुझे जनाता हूँ। मैं तुझे सबसे ज़ियादा चाहता हूँ, अतएव हे मन-वल्लभे! अब तू सोजा। मैं जागता हुआ बैठा रहूँगा और तेरी रक्षा करूँगा।"

पति-प्रेमही जिसका सर्वस्व है, ऐसी वह आर्य्यबाला साँसें भरती हुई सोयी और निद्रा-वश होगयी।



छठा अध्याय ।

महाभिनिष्क्रमण ।



ज चन्द्र कर्क राशिका है । आज तारागण भी कुमारको मानों यह प्रबोध दे रहे हैं कि, या तो मानका मार्ग स्वीकार करो अथवा भलाईका मार्ग अङ्गीकार करो। आज या तो आप चक्रवर्त्ती होनेका मार्ग पकड़ो या जगत्के कल्याणके लिये अनगारका संन्यासी-मार्ग अङ्गीकार करो। अब आप इन दोनों मार्गों मेंसे चाहे जो अंगीकार करो । अब आप इन दोनों मार्गों मेंसे चाहे जोनसा अङ्गीकार कर लीजिए, क्योंकि यही इस बातके निश्चय करनेका अन्तिम समय है ।

आज देव भी दयासागर सिद्धार्थ कुमारका अन्तिम निश्चय जाननेके लिये इकट्ठे हुए थे । राजकमार सिद्धार्थ अपनी प्रिय पत्नीको बग़लमें पलँग पर बैठा हुआ, अपने अन्तिम मार्गका निश्चय कर रहा है । कभी कुमार अपनी पत्नीके लावण्यमय मुख-चन्द्रको निहारता है, कभी विलास-प्रियता की सुन्दर सामग्री को ओर देखता है, पर कल्पना देवी उसके मनमें एक

अजब तरहका दृश्य पैदा करती है। वह अपने कल्पना-राज्य में वृद्ध, दुःखी, रोगी और मुर्दों की प्रत्यक्ष मूर्त्तियाँ देख रहा है। इस तरह देखते देखते वह इस तरह बोलने लगता है:—

"जाऊँगा, ज़रूर जाऊँगा, संसारका त्याग करूँगा, समय आ पहुँचा है। हे सोती हुई प्रिया! अब तुम्हारा मेरा वियोग होगा; पर सारे विश्वके कल्याण की ओर मेरा मन जा रहा है। इस आकाश में भी, मैं यही संदेशा पढ़ रहा हूँ। मेरा जन्म ही इसीलिये हुआ है। ये रात-दिन मुझे यही शिक्षा दे रहे हैं। जिन राज्योंको प्राप्त करनेके लिये तलवारें खोलनी पड़ें, अनेक निरपराधी मनुष्यों का खून बहाना पड़े और अनेक पशुओं का संहार हो, वे राज्य और उनसे प्राप्त होनेवाली कीर्त्ति मैं नहीं चाहता। मैं पृथ्वी पर शान्तिपूर्वक विचरना चाहता हूँ। पृथ्वी मेरा बिछौना होगी— जंगल मेरा निवास-स्थान होगा। मैं भिखारीकी पोशाक पहनूँगा और दयालु पुरुष खानेको जो कुछ देंगे, उसी पर अपना निर्वाह करूँगा। दूसरे भी अनेक दुःख मैं सहन करूँगा; क्योंकि जगत्के दुःखों की पुकार मेरे कानोंमें पड़ रही है। मेरा हृदय जगत् की दुःखमय ध्वनि से भर आता है और विदीर्ण होता है। मैं इन दुःखों को दूर करने के लिये प्रयत्न करूँगा—अपने सर्वस्वका त्याग करूँगा। इसके लिये मैं अपनी सारी शक्ति को काम में लाऊँगा।

"मुझे अपने लिये दुःख नहीं होता, पर सारी मनुष्य-जाति के लिये दुःख होता है। सत्य की खोजके लिये मैंने सर्वस्व अर्पण किया है। जरा, व्याधि और मृत्यु से मुक्ति पानेका मार्ग यदि स्वर्ग में भी होगा, तो मैं ढूँढ़ निकालूँगा—नरकमें होगा, तो वहाँ भी उसकी खोज करूँगा। मेरी आत्मामें यह दिव्य स्फुरण हो रहा है कि, सच्चे सत्य-शोधकके सामने मायाके परदे अदृश्य हो जायँगे। जिसके लिये मैं जगत् का त्याग करता हूँ, वह मार्ग मुझे ज़रूर मिलेगा। मैं मृत्युका विजेता हूँगा। यह मैं ज़रूर करूँगा। मेरी पहचानके और बेपहचानके सब लोगोंके लिये मेरे हृदय में दुःख हो रहा है। मेरे स्वार्थ-त्याग से—मेरे प्रेम से—मेरा जीवन दीर्घ होगा। हे तारागण! मैं आता हूँ। हे दुःखी जगत! तेरे लिये और तुझ पर निवास करनेवाले जीवोंके लिये यौवन, राज्य, सुख, वैभव, राज-महल और यहाँतक कि स्त्री तकका त्याग करता हूँ। हे प्रिये! जगत्के उद्धार में, मैं तेरा भी उद्धार करूँगा; क्योंकि जगत्‌मेंसे तू भी एक है। हे बालक! तुझे आश्वासन देनेके लिये रहूँ, तो मेरा निश्चय ढीला हो जाय; अतएव तेरा दूर होसे कल्याण चाहता हूँ।

"हे प्रिये! हे पुत्र! हे पिता! हे लोगो! विश्वके लिये, जगत्के कल्याण के लिये, थोड़े समय तक वियोग-दुःख सहन करो कि, जिससे प्रकाश प्रदीप्त होजावे और सारा संसार सत्य धर्मको जानने लग जावे। अब मैं जाता हूँ। जब-

तक मुझे अपना इष्ट पदार्थ न मिलेगा, तब तक मैं पीछे नहीं लौटूँगा।"

अब सिद्धार्थ कुमार खड़ा होता है। अपनी प्रिय पत्नीके सुन्दर मुख-कमलकी ओर देखता है। वह बेचारी दीन मक्षिका की तरह पड़ी हुई है। उसके पलँगके चारों ओर सिद्धार्थ तीन बार प्रदक्षिणा करता है। तीन बार पलँग छोड़ कर वह दरवाज़े की ओर जाता है और पीछे लौटता है। उसका सौन्दर्य्य मोहक था, उसका प्रेम विशाल था। अन्तमें वह पलँग की ओर देखकर विचार करता है,—"मेरे प्रिय आत्मीय जनो! तुम मुझे प्यारे लगते हो। तुम्हारा त्याग करना कठिन प्रतीत होता है; पर यदि मैं तुम्हारा त्याग न करूँ, तो हम सबकी क्या दशा होगी? वृद्धावस्था अपना काम करेगी और मृत्यु अपना जाल फैलायेगी। उनसे हम सब किस तरह बच सकेंगे? जब दीपक का सब तेल जल जायगा, तब ज्योति कैसी रहेगी? जब गुलाब कुम्हला जाता है, तब उसकी शोभा और सुगन्ध कहाँ रहती है? अन्तमें तो हे स्वजन! तुम्हारा मेरा वियोग होनेहो वाला है; तब उसे सहन करके मृत्यु, जरा, व्याधिके पञ्जोंसे सबको छुड़ानेके मार्गको क्यों न ढूँढूँ? ज़ियादा विचार करनेसे ज़ियादा घबराहट पैदा होती है।

"हे तात! हे प्रिया! हे पुत्र! हे माता! तुम सब मुझे प्यारे हो। मनुष्य और पशुओंके कल्याणका भगीरथ यज्ञ मैंने आरम्भ किया है। उसमें मैं अपने प्रेमकी आहुति दूँगा।



"प्रिये ! सो, ज़रा और सो ; मैं तेरी ही जैसी प्रिय दुनिया के उद्धार के लिये जाता हूँ ।"

पृष्ठ ५८ ।

इस यज्ञसे मुझे जो फल प्राप्त होगा, वह सारे जगत् को मैं दूँगा। यह यज्ञ उन्हींके लिये है और यज्ञका फल भी उन्हींके लिये है।"

यह कहता हुआ, वह महात्मा एकाएक खड़ा होगया। वह अपने निश्चयको अमलमें लानेके लिये कटिबद्ध होगया। इतनेमें उसकी सोती हुई प्रिय पत्नी नींद में कुछ हिली। राजकुमार की दृष्टि उस ओर जाती है और वह कहने लगता है,—"प्रिये! सो,ज़रा और सो। तेरी ही जैसी प्यारी दुनियाके उद्धारके लिये मैं जाता हूँ—अनन्त प्रकाश को प्राप्त करने के लिये निकलता हूँ—हृदयके छिपे हुए प्रेमको प्रकट करनेके लिये जाता हूँ। हृदय! चल मज़बूत हो।"

उस समय सिद्धार्थ का मुख-कमल उच्च प्रेम, दया और निश्चयात्मक विचारोंसे दिव्य हो रहा था। अहा! उसके मुख-मण्डल पर क्याही अपूर्व दिव्यता उस समय छाई हुई थी!

अब वह अपने सारथी को बुलाता है और अपना कन्तक नामक घोड़ा सजानेके लिये आज्ञा देता है। सारथी आश्चर्य और घबराहटमें लीन हो जाता है और वह यों बोलता है:—

"ओ राजपुत्र! राजपुत्र! क्या आप ज्योतिषी को झूठा बनाना चाहते हैं? क्या आपको राजपाट छोड़कर भिक्षा-पात्र ग्रहण करना ज़ियादा पसन्द है? कुमार! पिता के दुःख का कुछ तो विचार करो।"

यह सुनकर कुमार कहने लगा,—"धीरे बोल, धीरे बोल,

ऐसे कच्चे दिलका मत हो। सुन, ज्योतिषीके कहने मूजब हो, मैं राज्यका नहीं, पर विशाल विश्वराज्यका राजा और रक्षक होनेके लिये जाता हूँ। पिता जी की व्याकुलता केवल "राग"के आश्रित है। स्वार्थी "प्रेम" और "राग" से सिवा व्याकुलता के और कुछ फल नहीं निकलता। हे सारथि! सच जान, मैं पिताजीको सचमुच प्रेमसे चाहता हूँ। पिताजीको एवं अन्य प्रेमपात्रोंको कभी भी दुःखका अवसर हो न आवे, ऐसे इलाजको ढूँढनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। यदि तू सच्चा राजभक्त और स्वामिभक्त है,तो चल, देर मत कर, कन्तक को ला।"

सारथीको इस समय देवोंने आध्यात्मिक बल दिया। उसने तुरन्त ही घोड़ेको सजाकर कुमारके पास हाज़िर किया। कुमार बड़े प्रेमसे घोड़ेपर हाथ फेरता हुआ यों कहने लगा,—"प्रिय कन्तक! शान्त हो! शान्त हो! आज अपनको बड़ा प्रवास करना है, अतएव शान्त हो! शान्त हो! कन्तक! चल। तुझे आज एक महान कर्त्तव्य पालन करना है। सारे विश्वको जिससे सहायता मिले,ऐसे एक महान कार्य्यमें हिस्सा लेनेका तुझे आज महत लाभ प्राप्त होगा। केवल मनुष्यों होके लिये नहीं, पर जो अवाचक हैं और जो मनुष्योंके हाथोंसे बड़ी बुरी तरह सताये जाते हैं ऐसे प्राणियोंके लिये—सब जीवोंके लिये दुःखसे मुक्ति प्राप्त करनेका मार्ग ढूँढ़नेकेलिये तेरी पीठपर सवार हो रहा हूँ, अतएव चल! रास्ता पकड़!"



इस समय कुमार, सारथी और उस अश्वरत्न के सिवा और कोई न जागता था। तीनों ही आगे बढ़ते बढ़ते कपिलवस्तु से ४५ कोस की दूरी पर अनोमा नदी के किनारे आ पहुँचे।

पृष्ठ १०



"यह सुन्दर मुकुट, तलवार और रत्नजटित म्यान सबको लेकर अब घर जा।"

सत्यका बहादुर शोधक घोड़े पर सवार हुआ। घोड़ेने पवन की तरह चलना शुरू किया। उस समय देवोंने सब पहरेदारोंको निद्रामग्न कर दिया। घोड़ेकी टापकी आवाज़ वे न सुन सके और जिसकी आवाज़ खोलते वक्त आधे योजन तक जाती थी, वह दरवाज़ा खुलाही पड़ा हुआ था।

इस समय कुमार, सारथी और उस अश्वरत्नके सिवा और कोई नहीं जागता था। तीन ही जन आगे बढ़ते बढ़ते कपिल-वस्तु नगरसे ४५ कोसकी दूरी पर अनोमा नदीके किनारे आ पहुँचे। यहाँ कुमारने अपना घोड़ा ठहराया। घोड़ेके मुँह, पर बड़े प्रेमसे हाथ फेरा। पीछे सारथीसे कहा,—"नमक-हलाल सारथि! आज तैने जो सेवा बजाई है, उसका बदला सारे विश्वको मिलेगा। अब तू यह घोड़ा और सारे आभूषणों को लेकर पिताजीके पास जा। यह सुन्दर मुकुट, राजवंशी पोशाक, तलवार और रत्नजड़ित म्यान सबको लेकर अब जा। अब मुझे इनसे कोई काम नहीं। पिताजीसे कहना कि, मैं कृतघ्न नहीं, मेरी खोज पूरी होनेपर, मैं अवश्यमेव उनके अश्रु-जलको पोंछनेके लिये आऊँगा। यशोधरा को भी तसल्ली देना। अब विलम्ब मत कर जा; जल्दी घर जा। मैं सत्यका प्रकाश ढूँढ़नेके लिये फिरूँगा। इसमें मुझे विजय प्राप्त हुई, तो सारा विश्व मेरा होगा। यदि मनुष्य ही मनुष्यके लिये प्रयत्न न करे, तो और कौन करे?"

सातवा अध्याय

सत्य की खोजमें।

सारथी चला गया। सिद्धार्थ कुमारका मन शान्त हुआ। अब उसने चाहा कि, सिरके केश काट दिये जावें—रेशमी वस्त्र उतार दिये जावें; क्योंकि अब बाह्य सौन्दर्य्य प्रकट करनेके सिवा आन्तरिक सौन्दर्य्य प्रकट करनेकी आवश्यकता है। उसी समय भगवाँ वस्त्र पहने हुए एक व्याध उस ओर आता हुआ दिखाई दिया। कुमारने अपने रेशमी वस्त्र उसे देदिये और उसके भगवाँ कपड़े लेकर पहन लिये। व्याध कुमारके मूल्यवान रेशमी कपड़े पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। व्याधके पाससे छुरा लेकर, कुमारने अपने केश काट डाले। फिर कुमार आगे बढ़ा।

चलते चलते यह राज-ऋषि राजगृही नगरीके पास आ पहुँचा। यह नगरी उस समय मगध देशकी राजधानी थी। महाप्रतापी बिम्बसार यहाँ राज्य करता था।

राजगृही नगरी विन्ध्याचल पर्व्वतकी पांच घाटियों पर

बसी हुई थी। इससे उसकी रमणीयता स्वाभाविक और असाधारण थी। ये घाटियाँ प्रकृति-सौन्दर्य्यसे विभूषित थीं। मनुष्यके संसर्गसे दूर रहनेकी इच्छा रखनेवाले अनेक संन्यासी श्रमण—भिक्षुक साधु सन्त तप अथवा देह-कष्ट-क्रिया करनेके लिये और ध्यानमें मग्न रहनेके लिये इन घाटियों पर वास करते थे। इन्हीं पाँच घाटियोंमेंसे रत्नगिरी नामकी घाटी पर, सिद्धार्थ कुमारने अपना विश्राम-स्थान बनाया था।

योगी सिद्धार्थ भिक्षा पर निर्वाह करते थे। ये सूखी घास पर पड़े रहते थे। ये बहुत कम सोते थे। सूर्य्योदयके बहुत पहले उठकर ध्यान करते और पीछे देह-शुद्धि करके नगरमें जाया करते थे।

राज-कुटुम्बमें जन्मे हुए, सौन्दर्य्यपरिपूर्ण, उन युवा ऋषिराजको भिक्षाके लिये विशेष परिश्रम नहीं उठाना पड़ता था। जब वे अपनी घाटीसे नीचे उतर कर नगरमें प्रवेश करते थे, तब उनका भव्य मुखमण्डल देखकर दलके दल लोग जमा हो जाते थे। कितने ही लोग उनसे प्रार्थना करते थे,—"हे देव! हमारा अन्न ग्रहण करो।" पर कुमार सिद्धार्थने अपनी जिह्वापर पूरा क़ाबू कर रक्खा था। उस समय वे मिष्टान्न खाना पसन्द नहीं करते थे। वे शुष्क अल्प भोजन कर सन्तोष मानते थे और शीघ्र ही अपने विश्राम-स्थानपर वापस चले जाते थे।

ऋषि सिद्धार्थ अपने पासकी अन्य घाटियों पर भी घूमा

करते थे। अलग अलग मतोंको धारण करनेवाले सन्तोंके उपदेश सुनकर आनन्द मानते थे। वहाँ कितने ही ऐसे संन्यासी रहते थे, जो शरीरको शत्रुके समान गिनते थे। वे शरीरको अनेक प्रकारका कष्ट देकर योगाभ्यास करते थे। उनका सिद्धान्त ही था कि, अनेक आसनों और अनेक तरहकी क्रियाओंके द्वारा शरीरको कष्ट देना। बस, इसी विचारको लिये हुए कितने ही अपने बाँयें हाथको ऊँचा उठाये हुए रखते थे, जिससे रक्ताभिसरण न होनेके कारण वह हाथ आकके वृक्षके समान ठूँठ हो जाता था। कितने ही ऐसी पावड़ियों पर चलते थे, जिन पर तीक्ष्ण सूइयाँ गड़ी हुई थीं। कितने ही शरीरमें जङ्गलके काँटे चुभोते थे। कितने ही शरीरको कीचड़ और धूलसे पोतते थे। कितने ही श्मशान-भूमिका सेवन करते थे। कितने ही रसेन्द्रियकी मधुरताका नाश करनेके लिये कड़वेसे कड़वे पदार्थ खाते थे। कितने ही तो ऐसे थे कि, जिन्होंने अपनी कितनी ही इन्द्रियोंको काट डाला था और अन्धे, बहरे, गूँगे और लँगड़े बन गये थे।

इन सब रोमाञ्चकारी दृश्योंको देखकर, ऋषि-कुमारको बड़ी दया आयी। यह देखकर और भी उसका हृदय विशेष सकरुण हुआ कि, यह सब अज्ञान धर्मके लिये हो रहा है। तब सिद्धार्थने उन लोगोंसे कहा,—'मैं बहुत दिनोंसे पास हीकी टेकरी पर रहता हूँ और मैं भी सत्यकी खोजमें हूँ। मैं अपने इन बन्धुओंके अज्ञान कष्टके लिये दुःखी होता हूँ। यह

जीवन मूल ही में दुःखमय है, इसे विशेष दुःखमय क्यों करते हो? इस पर उन तपस्वियोंके गुरुने उत्तर दिया—"शास्त्रों में ऐसा लिखा हुआ है कि, जो मनुष्य अपने शरीरको इतना कष्ट देता है कि, जीवन दुःखमय और मृत्यु शान्तिरूप हो जाती है, तो उसके सब पाप धुल जाते हैं और उसकी आत्मा दुःखकी भट्टीमें शुद्ध होकर स्वर्गमें चली जाती है।"

यह सुनकर शाक्य मुनि बोले,—"सूर्य्यके तापसे तपा हुआ समुद्रका जल पहले ऊँचा चढ़कर बादल रूप होता है; फिर वर्षाके रूपमें ज़मीन पर गिरता है और वे सब बूँदें जमा होकर नदीमें मिलती हैं और अन्तमें वह नदी समुद्रमें जा मिलती है। इस तरह जहाँसे वह चलता है वहीं वापस आकर मिल जाता है। मान लो, कि तुम्हारे इस प्रयत्नसे स्वर्ग मिल गया, पर उसका फल पूरा हो जाने पर, तुम्हें यहाँ का यहीं आना पड़ेगा और फिरसे यही प्रयत्न शुरू करना पड़ेगा।"

इसपर ऋषिने कहा,—"हो सकता है कि ऐसा फिर करना पड़े, पर रात्रिके बाद दिन आता है और तूफानके पीछे शान्ति प्राप्त होती है। यह शरीर बन्धन-कारक है। आत्माके ऊँचे उठने में यह विघ्नरूप हो जाता है; अतएव हम इस शरीरको धिक्कारते हैं, कष्ट देते हैं और देवोंके साथ सुख प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं।"

शाक्यमुनिने कहा,—"चाहे स्वर्गका सुख कितने ही वर्षों तक रहे, पर आखिर उसका अन्त तो अवश्य है। क्या कोई ऐसा

भी जीवन है, जो शाश्वत् हो ? कहो, क्या तुम्हारे देव शाश्वत हैं ?"

ऋषिने कहा,—"नहीं, उनकी भी जीवन-मर्य्यादा होती है। उसके पूरे होते ही वे मर जाते हैं।"

यह शब्द सुनकर सिद्धार्थ का हृदय द्रवित हो उठा और उसने कहा,—"हे ऋषियो! तुम पवित्र हो एवं दृढ़ मनके हो; अतएव अब भी बुद्धि को कुछ काम में लाओ। शरीर को कष्ट देना छोड़ दो। हो सकता है कि, इसी तरह के अज्ञान-कष्ट से तुम्हें किसी तरह कामायाबी और लाभ हो,पर उस लाभका भी अन्त आवेगा। इस शरीररूपी मकान को, जिस से खिड़कियों के द्वारा कुछ प्रकाश आ सकता है, तोड़ने का प्रयत्न क्यों करते हो ?"

ऋषियोंने प्रत्युत्तर दिया,—"हमने यह मार्ग पसन्द किया है और मृत्यु तक इसी मार्ग से जायँगे। अय नौजवान! यदि इस से अच्छा मार्ग तू जानता है तो बता दे, नहीं तो अपना रस्ता पकड़।"

श्रमण सिद्धार्थने इस पर कुछ उत्तर न दिया। वह आगे चलते बने। चलते चलते कुमार यह सोचते जाते थे कि, ये बेचारे कितने अज्ञान में डूबे हुए हैं! क्या इस अज्ञान-समुद्र से इन्हें निकालने का मार्ग नहीं मिलेगा ? मैं उसकी ज़रूर खोज करूँगा।

यही बातें सोचते सोचते कुमार जा रहे थे कि, उन्होंने

एक गड़रिये को देखा। वह बकरे ले जा रहा था। बेचारे बकरे अपने ऊपर गुज़रनेवाले भावी जुल्म—अत्याचार—की दुःख-मय कल्पना से आर्त्तनाद करते हुए जा रहे थे। उनमें से एक बकरी के बच्चे के पैर में चोट लगी हुई थी। वह बड़ी मुश्किल से चल रहा था। सिद्धार्थ को उस बच्चे पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसे उठा कर अपने कन्धे पर रख लिया और उसको पुचकार कर कहने लगे— "हे निराधार पशु! तू शान्त हो। गड़रिया जहाँ इन सब बकरों को ले जायगा, वहाँ मैं भी तुझे ले चलूँगा। गुफाओं में बैठ कर जगत् के दुःख का विचार करना जैसा उत्तम काम है, वैसा ही पशु को शान्ति प्रदान करना है।"

फिर कुमारने गड़रियेकी ओर देखा और उससे कहा,—"हे मित्र! ऐसी सख्त धूप में इस पशुओं के टोले को कहाँ ले जाते हो?"

उस गड़रिये ने शीघ्रही जवाब दिया,—"आज हमारा राजा देवों के लिये यज्ञ करने वाला है। उसमें सौ बकरे और सौ भेड़ के बच्चे होमे जानेवाले हैं। अतएव उसी यज्ञ के लिये, मैं इन बकरों को ले जा रहा हूँ।"

"चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" यह कहकर सिद्धार्थ उस बकरीके बच्चे को कन्धे पर लिये हुए शान्तिपूर्वक उसके साथ साथ चलने लगे।

सन्ध्या काल का समय निकट था। भगवान् भास्कर अ-

स्ताचल की ओर जा रहे थे; मानों वे सूचित कर रहे थे कि, यज्ञका भयङ्कर दृश्य वे किसी तरह देखना नहीं चाहते। श्रमण सिद्धार्थ गड़रिये के साथ-साथ नगरमें प्रविष्ट हुए। द्वारपालों ने जब इस दिव्य कान्तियुक्त ऋषि को बकरी का बच्चा कन्धे पर लिये हुए आते देखा, तो वे पीछे हट गये। श्रमण सिद्धार्थ का नम्र बदन देखकर व्यापारियों ने शब्दों की मारा मारी करना छोड़ दिया। सब लोग अपना अपना कारोबार छोड़कर, इस महात्मा का दिव्य मुख-मण्डल देखने में निमग्न हो गये। उसकी सुन्दर कान्तिको देखनेके लिये स्त्रियोंके झुण्ड के झुण्ड जमा होगये और वे आपसमें बातें करने लगीं,—"यज्ञ के निमित्त आहुति लानेवाला यह भव्य और सुन्दर मनुष्य कौन है? इसके नेत्र युगल कैसे शोभायमान दीखते हैं! कहीं इन्द्र, चन्द्र या कामदेव ने तो मनुष्य का रूप धारण नहीं किया है!"

इसी समय किसीने राजा विम्बसार को यह समाचार दिया कि, एक पवित्र शान्त योगी आया है। राजा विम्बसार ने उक्त योगीको वेदीके पास बुलाया।

राजा बिम्बसार वेदी पर बैठा बैठा यज्ञ की सब तैयारियाँ देख रहा था। उसके दोनों ओर श्वेत वस्त्र पहने हुए ब्राह्मण क़तार बाँधे खड़े थे। अग्नि में घृत डाल कर उसे सतेज कर रहे थे। मन्त्रोच्चार के साथ-साथ ज्यों ज्यों वे अग्नि में घी और सोमरस डालते जाते थे; त्यों त्यों अग्नि-ज्वाला बड़े आवेशके साथ आकाश की खबर लेती थी।

एक ओर पशुओं के टोले के टोले खड़े हुए थे। एक बकरे का मुँह मूँज नामकी घाससे सीं दिया गया था। एकाएक एक वृद्ध मनुष्य खड़ा होता है और निर्दोष बकरेके गलेके समीप छुरा लेजा कर मन्त्रोच्चार करता है। देखो, वह देवों को खूनकी साक्षीके लिये बुलाता है और यों प्रार्थना करता है:—

"ओ देवो! अभी तक किये गये सब यज्ञोंमें, सबसे बड़ा यज्ञ राजा बिम्बसार की तरफ से किया जाता है। इस अग्निकुण्डमें सीजने वाले रक्त-मांस की गन्ध से तुम तृप्त होओ—तुष्ट होओ—प्रसन्न होओ! राजाके सब पाप इस होम में होमे जानेवाले बकरे पर पड़ें और इस बकरेके साथ-ही-साथ राजाके सब पाप भस्म होवें।"

अब वह वृद्ध ब्राह्मण एक चमकदार छुरा उठाता है। सबकी आँखें उसकी ओर आकर्षित होती हैं। सब दर्शकगण इस भयङ्कर दृश्यको देखनेके लिये दम साधे खड़े हैं। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार करके छुरे को फिर उठाता है; पर क्या मजाल कि, एक महान् आत्मा की मोजूदगी में वह उस प्राणीका बाल भी बाँका कर सके। वह शान्तमूर्ति दयासागर सिद्धार्थ उस बकरेके पास जाता है और उसके बन्धन को तोड़ता है। फिर वह ब्राह्मणके सामने आकर कहता है,—"ए परमात्मा के अंश! खुशी से तू यह छुरा मेरी छाती अथवा गर्दन में भोंक दे। मैं और बकरा एक ही हैं।"

यह देखकर ब्राह्मण स्तब्ध होगया। उसका उठा हुआ हाथ ज्योंका त्यों रह गया। ब्राह्मण-मण्डलीमेंसे उस समय कोई चूँ तक न बोला। अहा! महात्माओं का—दिव्य आत्माओंका—ऐसाही प्रताप होता है।

अब दयासागर राजर्षि सिद्धार्थ राजा बिम्बसारकी ओर देखता है और बड़े ज़ोरके साथ अपनी अमर वाणीका प्रवाह यों बहाता है,—"ए राजन्! ऐ ब्राह्मणो! तुम नहीं जानते कि इस जीवन का मूल्य कितना है? यह एक ऐसी चीज़ है कि, जिसे हरण करनेकी शक्ति तो हर एक रखता है; पर देनेकी शक्ति चक्रवर्त्तीमें भी नहीं है। इस जगत् में जो जीते हैं, वे दया होसे जीते हैं और दयाही के लिये जीते हैं। परम दयालु परमात्मा की दयाके सिवा एक क्षण भी जीना अशक्य है। इस दिव्य विचारकी जो इज्जत कर सकते हैं, वह परमात्माकी प्रजाको सतानेका कभी साहस नहीं कर सकते; क्योंकि यदि संसार मेंसे "दया" का तत्त्व उठ जावे, तो यह संसार निवास करने योग्य ही न रहे। ए मनुष्यो! तुम इन मूक प्राणियोंके देव हो। तुम अपने देवोंसे सुख प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, पर तुम्हें देव माननेवाले इन प्राणियों पर तुम छुरी चलाते हो! ज़रा सोचो तो सही, तुम कितना अन्याय कर रहे हो! कैसे घोर कार्य्य में आनन्द मान रहे हो! क्या तुम्हें देव माननेवाले इन निर्दोष प्राणियों की तुम यही भलाई कर रहे हो, जो उनके गले पर बड़ी

निर्दयताके साथ छुरी चला रहे हो। रक्तसे जो देव सन्तुष्ट होते हैं, वे देव कैसे कहे जा सकते हैं? जो प्राणी सारी उम्र भर तुम्हारी सेवा करते हैं, जब तुम उन पर छुरा चलाने में प्रस्तुत होते हो, तब वह तुम्हारा हाथ चाटने लग जाते हैं। जिनका तुम पर इतना भारी विश्वास है,उन निर्दोष मूक जीवोंका मूर्खता से संहार करते हुए तुम्हें क्या ज़रा भी शर्म मालूम नहीं होती? ए आर्यो! तुम्हारे हृदय की दया और प्रेम कहाँ उड़ गये हैं, कि जिससे धर्म के नामसे भी तुम ऐसे निर्दय और द्वेषयुक्त कार्य्य करनेमें उतारू हुए हो? यह बात निश्चय करके जानना कि, रक्त से कभी आत्मा नहीं धुलती। इस विश्व का गणित नियमित रूप से चलता है और हर एक मनुष्य अथवा देव को प्रेम-विरुद्ध कार्य्य करने के अपराध में दण्ड भरना होगा। तुम दुःखों से मुक्ति पाने के लिये, ऐसे घृणित उपायों से, देवों को सन्तुष्ट करना चाहते हो; पर तुम यह नहीं जानते कि दुःख असत्‌का विचार और असत् कार्य्यों का प्रतिबिम्ब मात्र है। तुम भूल से दुःख उत्पन्न करते हो और फिर इस तरह के घृणित मार्गों से उस राक्षस का पोषण करते हो। दुःखोंको दूर करनेकी शक्ति देव क्या, देवोंके देवमें भी नहीं है। यह शक्ति तुम प्राप्त कर सकते हो। इसकी प्राप्तिका रामवाण उपाय और कुछ नहीं केवल "दया" और "प्रेम" पर कोमल भाव रखना है। अतएव

दया और प्रेम पर कोमल भाव रखो। सबको आत्मवत् प्रेमसे देखो, जिससे तुम्हारे दुःख आप ही आप जल जावेंगे और तुम सुखी होगे।"

यह कहकर शाक्य मुनिने उस बकरेको कन्धेपर चढ़ा लिया और वहाँ से रवाना होने लगे; पर राजा विम्बसार शाक्यमुनिके इन तात्विक शब्दोंसे इतना भक्ति-वश होगया था कि, वह उठकर कुमारके पैरोंमें गिर गया और विनय-पूर्वक कहने लगा:—

"दयालु देव! हमें क्षमा करो। हम अज्ञानान्धकारमें पड़े रहनेके कारण जो जो अपराध करते आये हैं, उनके लिये हमें बड़ा शोक है। आजसे मेरे राज्यमें कोई पशुकी बलि न दे सकेगा। ओ कृपालु महात्मन्! शान्त हो; ज़रा ठहरो और मेरे हृदयको पवित्र करनेकी कृपा करो।" यह कहकर राजा खड़ा हुआ और हाथ जोड़ने लगा। दूसरोंने भी राजाका अनुकरण किया।

दया, प्रेम, अनुकम्पा, सत्य, राजर्षि सिद्धार्थके मुखपर अपनी अलौकिक प्रभा प्रकट कर रहे हैं। ऐसे दिव्य मुख-मण्डलसे ऋषिराज राजा विम्बसारसे कहते हैं:—"अहो शुभ नृपति! तुम्हारे विचारोंमें इस तरहका परिवर्त्तन देख-मुझे बहुत सन्तोष हुआ है।"

दयासागर शाक्य मुनिसे यह शब्द सुनकर, फिर राजा उन के पैरोंमें गिर पड़ा। पुजारियोंने यज्ञ-कुण्ड बुझा दिया। इस

समय राजा बिम्बसार और दयासागर सिद्धार्थ कुमारके इस तरह प्रश्नोत्तर होने लगे:—

बिम्बसार—"हे श्रमण! आपके हाथ राज-दण्ड धारण करने योग्य हैं। आपके हाथमें भिक्षापात्र शोभा नहीं देता। अधिकार-तृष्णा भी उदारचरित मनुष्योंको शोभा ही है; धन तुच्छ मानने योग्य वस्तु नहीं है। सारांश यह कि धर्म, सत्ता और धन,—इन तीनों होका विचारपूर्वक और योग्य उपयोग कर सके, वह सच्चा उदारचरित मनुष्य है।"

सिद्धार्थ—"राजा! तू विशाल-हृदय, उदार और बुद्धि-मान मनुष्य है, इसमें सन्देह नहीं। सच है, कि अल्प तृष्णा बुरी नहीं है; पर तृष्णा मर्य्यादामें रहनेवाली नहीं है। सत्ताके साथ-साथ चिन्ता अवश्य लगती हैं। पार्थिव राज्याधिकार, स्वर्गवास और त्रिभुवनके स्वामित्वसे पवित्र आचारका अधिक माहात्म्य है। सम्पत्तिकी चञ्चलता और मोह-जालका मुझे ज्ञान होगया है। अब मैं अन्न खाकर विषका सेवन कैसे करूँ? क्या पानीमें रहनेवाली मच्छीको आमिषसे और स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दतासे उड़नेवाले पक्षीको पिंजरेसे मोह करना चाहिये? क्या सर्पके मुँहसे मुक्ति पाये हुए शशीको फिर उसके मुँहमें जाना चाहिये? अन्धे मनुष्यको दृष्टि प्राप्त हो जाने पर, क्या फिर अपनी आँखें फोड़ लेनी चाहियें? मेरे लिये वृथा शोक मत करो। मेरा मन ऐहिक बातोंसे विमुख होगया है। अब उसे उनसे कुछ आनन्द नहीं होता।

इसी कारण मैंने अपने राज्याभूषणोंका त्याग किया है। दुःखसे मुक्ति-प्राप्तिके मार्गको खोजना, मेरे जीवनका मुख्य उद्देश्य है।" यह सुनकर राजा बिम्बसारको सिद्धार्थके ऊपर औरभी ज़ियादा भक्ति हो गयी। इस महात्माके दर्शनसे वह अपने तईं बड़ा कृतार्थ समझने लगा। उसने कहा,—"हे दयासागर महात्मन्! आज मेरा अज्ञानान्धकार दूर हुआ है। आज मैंने दया का—सच्चे मनुष्य-जीवनका—तत्व समझा है। हे दयालु देव! आजसे मैं ऐसी आज्ञा प्रकाशित कर दूँगा कि, मेरे राज्यमें कोई प्राणी हिंसा न करे।"

सिद्धार्थ महाराजने कहा—"हे राजन्! अब मुझे जाने दो। प्रमत्त दशामें पड़ना मेरे लिये ठीक नहीं। मैं प्रकाश की खोजमें अवश्य विजय प्राप्त करूँगा। मेरा मन मुझे साक्षी दे रहा है कि, मैं अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा। हे प्रतापी राजन्! जब मुझे प्रकाश मिल जायगा, मेरी अभीष्ट-सिद्धि हो जायगी; तब मैं तुमसे आकर अवश्य मिलूँगा। हे दयालु नरेश! मेरा इतना उपदेश ग्रहण करो कि, तुम्हारे राज्यमें कोई मनुष्य अपने पेटको प्राणियोंकी क़ब्र न बनावे—इसका बन्दोबस्त करो। सबल को निर्बलकी रक्षा करनी चाहिये। इस पवित्र नियमका भङ्ग करके सबल निर्बलका भक्षण करे, यह सचमुच पैशाचिक कार्य्य है। इस तरहके घृणित कार्य्यसे यह संसार रौरव नरक सा दीख पड़ता है। धन्य है! उस भूमिको जहाँके मनुष्य रक्तरहित शुद्ध भोजन करके

शुद्ध विचारोंमें एवं शुद्ध भावनाओंमें रमण करते हैं। वह भूमि सचमुच स्वर्ग-भूमि है। हे दयालु नरेश! तुम्हें उस दिन अपने तईं बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिये, जिस दिन तुम अपनी राजधानीको इस तरहकी स्वर्ग-भूमि बना सको।"

राजा बिम्बसारने योगिराज सिद्धार्थसे कहा,—"हे दयालु देव! मैं आपके उपदेशानुसार अपने राज्यमें सब बन्दोबस्त कर दूँगा।" पश्चात् राजाने इस दयासागर महात्माका नाम-ठाम पूछा, तो उसे मालूम हुआ कि यह और कोई नहीं—राजा शुद्धोदनके पुत्ररत्न हैं। यह जान कर, राजा बिम्बसारको औरभी अधिक आनन्द हुआ।

पहचान ताज़ी हो जानेसे, राजाने दयासागर शाक्य मुनिको रोकनेका बड़ा प्रयत्न किया; पर शाक्य मुनिने यही जवाब दिया,—"स्नेह-बन्धन में फँसना मेरे लिये हानिकर है; मुझे क्षमा करो; मेरी खोज पूरी हो जानेपर मैं तुमसे ज़रूर मिलूँगा और तुम्हें लाभ पहुँचाऊँगा।"

यह कहकर श्रमण सिद्धार्थने अपना मार्ग पकड़ा और थोड़ी ही देरमें अदृश्य होगया।

श्रमण महात्माके उपदेशका असर राजा बिम्बसारके हृदयमें बिजलीका सा हुआ। क्यों न हो? निःस्वार्थ, परोपकारी और जगत्के दुःखसे दुःखी होनेवाले महात्माओं के उपदेशों होका प्रभाव न पड़े तो और किसका पड़े? राजा बिम्बसारने नीचे लिखे मुआफ़िक एक शिलालेख तय्यार करवाया और

ढौंडी पिटवाकर, उसपर अमल करनेके लिये प्रजाको ताकीद कर दी। वह शिला-लेख इस आशयका था:—

"मगधदेशके राजा बिम्बसारकी ऐसी इच्छा है कि, आज तक यज्ञके निमित्त पशु-वध किया जाता था और भोजनके लिये पशुओंकी हिंसा की जाती थी ; पर दिन-दिन ज्ञान बढ़ता जाता है ; सब जीव समान हैं और दया करनेवालोंको दया मिलती है—इस सिद्धान्तको ग्रहण कर कोई यज्ञके निमित्त पशु-वध न करे। वैसेही भोजनके लिये पशु तथा पक्षीका संहार न करे।"

बिम्बसारके पाससे चलकर दयासागर सिद्धार्थ एक नदीके पास पहुँचा। वहाँ उसके पास एक सुन्दर महिला आयी, जिसकी आँखोंसे आँसुओंकी वर्षा हो रही थी। उसका मुख-मण्डल म्लान एवं शोक-चिह्नोंसे परिपूर्ण था। वह महात्मा सिद्धार्थसे प्रार्थना करने लगी,—"हे प्रभो! क्या आप वही महात्मा हैं, जो मुझे कल तपोवनमें मिले थे और मेरे प्रति दया प्रकट की थी? कुछ दूरी पर मैं अपने प्यारे बच्चेके साथ एक झोंपड़ीमें रहती थी। मैं अपने इकलौते पुत्रका लालन पालन करती थी। एक समय मेरे जिगरका टुकड़ा वह लड़का पास ही उगे हुए फूलसे खेल रहा था कि, वहाँ एक सर्प आ निकला और मेरे बच्चेके लिपट गया। बच्चा अबोध था। वह क्या जाने कि सर्प क्या होता है? सो हे प्रभो! वह बड़े मज़ेके साथ उससे खेलता रहा। यहाँ तक कि उसने

अपना हाथ उस सर्पके मुँहमें दे दिया। हे दयालु देव! उस भयङ्कर विषैले प्राणीने उसे डस लिया। फिर हे कृपासागर! थोड़ी ही देरमें मेरा लड़का खेलता खेलता बेहोश हो गया! मैंने उसे लोगोंको बताया। किसीने कहा—'इसे ज़हर चढ़ा है।' किसीने कहा—'यह थोड़े समयमें मर जायगा।' पर हे पूज्य महात्मन्! मेरा बच्चा—मेरे जिगरका टुकड़ा—मेरी आँखोंका तारा—मेरा प्राणाधार—मुझसे सदाके लिये जुदाहो जावे, यह बात मुझे असह्य लगती है। इस दुःखसे मेरे हृदयके टुकड़े टुकड़े हुए जाते हैं,—मेरे प्राण पखेरू निकलने की तैयारी करने लगते हैं। हे संसारके उद्धारक महात्मन्! मेरे बच्चेकी आँखोंमें फिर प्रकाश आवे और वह अपनी तोतली ज़बान से मुझे मा मा कह कर बुलावे, ऐसी दवाके लिये मैं घर घर फिरने लगी, पर किसीने मुझे वह दवा न दी। अन्तमें एक मनुष्यने मुझसे कहा कि, परली टेकरी पर एक महापुरुष निवास करते हैं, वे कषाय वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनसे जाकर पूछ। यदि उनके पास कोई दवा होगी, तो वे ज़रूर देंगे।' तब हे कृपानाथ! मैं काँपती काँपती आपकी शरण आयी। मैंने अपने बच्चेको आपको बताया। इस बालकमें नये जीवन का सञ्चार हो, इसकी दवा मैंने आपसे पूछी। हे प्रभो! आपने मुझे धिक्कारा नहीं, पर दयापूर्ण दृष्टिसे उस बालककी ओर देखा और अपना कोमल हाथ उस बालक पर फेरा; फिर आपने उसके शरीर पर वस्त्र उढ़ानेके लिये मुझे

आज्ञा दी। उस समय आपने मुझसे कहा था कि बहिन! एक उपाय है। जो दवा मैं कहूँ, वह तू ला सके तो यह रोग मिट जाय। किसी वैद्यसे जब दवा करवानी होती है, तब जैसा वह कहता है वैसा ही करना पड़ता है। अतएव मैं तुझसे कहता हूँ कि, तू एक तोले सरसोंके दाने मुझे लादे। पर इतना याद रखना कि, जिस घरमें मा, बाप, बालक, युवा, नौकर चाकर आदि कोई न मरा हो, उसी जगहसे लाना। हे प्रभो। आपने मुझे यह आज्ञा दी थी।"

श्रमण सिद्धार्थने सकरुण स्वरसे कहा—"प्रिय कीशो गोतमी! हाँ, मैंने ऐसा ही कहा था—पर क्या तुझे वे दाने मिले?"

"हे देव! मैं अपने कन्धे पर बालकको लेकर, घर-घरमें भटकी और लोगोंसे कहने लगी कि, मुझे इस बालककी दवामें एक तोले सरसोंके दाने चाहियें, उन्हें कृपापूर्वक दो। तब हे दीनबन्धो! जिन जिनके पास वे थे, उन सबने मुझे वे दिये; क्योंकि दीन मनुष्य दीन मनुष्योंके प्रति बड़े दयालु होते हैं। पर जब मैं पूछती कि, क्या तुम्हारे घरमें कभी कोई मरा है; तब वे जवाब देते कि बहन! यह क्या पूछती है? जीवितों की संख्या बहुत कम है, पर मृतोंकी संख्याका पार नहीं। ये शब्द सुनकर मैं उनके दानोंको वापिस लौटा देती और दूसरे घर जाती; पर सर्वत्र यही जवाब मिलते थे। कोई कहता था कि दाने तो हैं, पर हमारा पिता मर गया है। कोई कहता था कि, दाने तो तैयार हैं, पर हमारा नौकर मर

गया है। कोई कहता था कि दाने तो हैं, मगर उन्हें बोनेवाला मर गया है।

"हे प्रभो! मैं घर घर फिरी, पर कोई ऐसा घर न मिला जहाँ कोई न कोई मरा न हो। हे ज्ञानी महात्मन! आप ही कृपाकरके मुझे कोई ऐसा घर बताइये, जहाँ कोई मृत्यु न हुई हो और सरसों के दाने मिल जावें।"

जब महात्मा सिद्धार्थने देखा कि उपदेश देने का यह ठीक अवसर है, तब उन्होंने यह उपदेश देना शुरू किया :—

"प्रिय बहन! तैने वह मार्ग ढूँढ़ निकाला है, जो बहुतों को अज्ञात है। तुझे जो कड़वा प्याला पिलाना था, उसका तुझे खुद ही ज्ञान हो गया। जिस बालक को तू चाहती है, वह कल ही मर गया था। आज तुझे मालूम हुआ है कि, सारा जगत् ही तेरे जैसे दुःख को भोग रहा है, इससे दुःखका अंश कुछ कम हो जाता है। यदि तेरे आँसू रुक सकें और मृत्युसे छुटने का मार्ग मिल जाय, तो मैं अपना खून देने तक के लिये तैयार हूँ। पर बहन! अभी तक यह सत्य मुझे मिला नहीं। मैं उसकी खोज में हूँ। जा, तू अपने बालक का अग्निसंस्कार कर।"

इस तरह बोधि ज्ञान उत्पन्न होने के पहले ही, श्रमण-सिद्धार्थ ने उपदेश देने और जगत् का दुःख दूर करने का काम शुरू कर दिया था। क्योंकि शक्ति हो अथवा न हो,पर उदारहृदय पुरुष दूसरोंका दुःख नहीं देख सकते।

आठवाँ अध्याय ।

बुद्धत्व की खोजमें



जगृही नगरी छोड़कर शाक्य मुनि वैशालि नगरी की ओर जाने लगे, वहाँ आराढ़ कालाम और उद्रक रामपुत्र नामक दो ब्राह्मण-संन्यासी अपने अनेक शिष्यों सहित रहते थे। प्रथम तो शाक्य मुनि आराड़ कालाम के पास गये, जो साँख्य मत-संस्थापक कपिल का शिष्य था। यह उस समय के प्रचलित धर्म-सम्बन्धी वाद-विवादमें बड़ा निपुण था। शाक्य मुनि का रूप, गम्भीरता और मुख का प्रताप तथा कान्ति देख कर उसने और उसके शिष्यों ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। युवावस्था में राजपाट छोड़ देनेके कारण उनकी बड़ी प्रशंसा की और सत्य की शोध में अन्त तक लगे रहने का आग्रह किया।

शाक्य मुनिने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—"हे महात्मन्! आपके नाम की कीर्त्ति सुनकर, मैं आपके पास सत्य ढूँढ़नेका

मार्ग जानने आया हूँ। जन्म, मृत्यु और व्याधि के पञ्जेसे कैसे छुटकारा हो सकता है? उसके साधन क्या हैं? उसके लिये कैसे जीवन बिताना चाहिये? अन्तिम स्थिति कैसी होती है? ये सत्य मैं जानना चाहता हूँ। यही जानने के लिये मैं आपके पास आया हुँ। कृपा कर यह बात मुझे समझाइये।"

आराड़ ऋषिने कहा,—"ये प्रश्न बहुत गहन हैं; पर तुम्हारी उन्हें जानने की इच्छा हैं, तो लो सुनो। उच्चातिउच्च स्थिति ब्रह्म की है। ब्रह्म अमूर्त्त है, अक्रिय है, निर्विकारी है, निर्गुण है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। ब्रह्म जड़ वस्तुओंसे भिन्न है। मुक्तिके साधनों में मुख्य श्रद्धा है। आत्मा निर्विकारी है, ऐसी श्रद्धा रखनेसे मनुष्य निर्लिप्त रहता है और परमपद को प्राप्त करता है।"

ये शब्द शाक्यमुनि को कुछ बुद्धिमत्ता के मालूम हुए; पर इनसे उन्हें पूरा सन्तोष नहीं हुआ—इनसे उनकी क्षुधा शान्त नहीं हुई। सत्य के जिस मार्ग की वे खोज में थे वह उन्हें नहीं मिला। सत्य प्राप्त करने के साधन भी उन्हें प्राप्त नहीं हुए। थोड़े ही दिनों तक शाक्य मुनि इस ऋषि के पास रहे, फिर वे उससे छुट्टी लेकर उद्रक रामपुत्र के पास गये।

उद्रक रामपुत्रने आराड़कालाम के समान ही सिद्धान्त प्रतिपादित किये। केवल उसने यह विशेषरूप से कहा कि "कर्मके अनुसार मनुष्य की गति होती है; अतएव मुक्ति के

चाहनेवाले या मुमुक्षु को कर्म्मों से छूटना चाहिये । जो मनुष्य कर्मों से छूटता है, वह शाश्वत् स्थान प्राप्त करता है ।" पर कर्म्म से मुक्त होनेका मार्ग वह न बता सका । शाक्य मुनि ने बड़े शान्त चित्त से ऋषि की ये सब बातें सुनीं ; पर इनसे भी उन्हें पूरा सन्तोष नहीं हुआ । फिर शाक्य मुनि मन्दिरों में, जहाँ ब्राह्मण क्रिया करा रहे थे, पहुँचे ; पर उनके सामने पशुओंका बध हो रहा था । यह देखकर दया-सागर शाक्यमुनि का हृदय द्रवित हो उठा । उन्होंने ब्राह्मणों को वही पवित्र "अहिंसा परमोधर्मः" का उपदेश दिया, जो राजा बिम्बसार को दिया था । उन्होंने यह बात भली भाँति समझा दी कि पशु-बध निरर्थक है और बिना नीति नियमों-के अनुसरण किये कदापि शुद्ध धर्म्म का अनुष्ठान नहीं हो सकता ।

फिर दयासागर शाक्यमुनि वहाँ से चले और मगध देश के गया नगरके पास के उरुविल्व नामक जङ्गल में, जहाँ उद्रक के पाँच प्रतापी शिष्य उग्र तपश्चर्य्या कर रहे थे, आ पहुँचे । इन पाँचों में कौण्डायन मुख्य था । ये पाँचों ही शिष्य अपनी इन्द्रियों को ठीक तरह से क़ाबूमें रखते थे, नीति के नियमोंका अच्छी तरह पालन करते थे और निरञ्जन नदी के किनारे के पास के तपोवन में कठिन तपश्चर्य्या करते थे । उनका उत्साह और धैर्य इतना प्रबल था कि, शाक्यमुनि के मन पर उनका बेहद असर हुआ । सत्य की खोज में यह

साधन कहाँ तक उपयोगी होते हैं, यह बात आज़माने का शाक्य मुनिने सङ्कल्प किया। उन्होंने उन पाँचों शिष्योंके पास ही एक स्थानको पसन्द कर लिया और वहाँ उग्र तपश्चर्या करने लगे एवं जुदे जुदे सिद्धान्तों पर विचार करने लगे। मृत्यु, व्याधि और जरासे मुक्त होनेके मार्ग पर विचार करते करते, वे इतने ध्यानमग्न हो जाते कि, भोजनका अवसर भी चूक जाते थे।

महात्मा बुद्धदेव ने सब तरहके मनोविकारों को वशमें कर लिया था। इन्द्रियाँ भी उनके क़ाबूमें हो गयी थीं। कोई भी संसारी पुरुष न पाल सके, ऐसे उपवास-सम्बन्धी सख़्त नियम वे पालने लगे। ऐसी क्रिया वे छः वर्ष तक बराबर करते रहे। कभी-कभी अन्नके एक कण पर ही वे रह जाते थे। इससे उनका शरीर-सौन्दर्य्य नाश होगया—इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। जिस तरह कुसुद की सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है, वैसेही महात्मा शाक्यमुनि के इस तपकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गयी। सूखी हुई डालीके समान उनका शरीर देखने के लिये चारों ओरसे लोग आने लगे। इस तरह छः वर्ष बीत गये, पर तृष्णाका विच्छेद करनेवाला और सत्य ज्ञानका प्रकाशक, उच्च ध्यानसे, वे प्राप्त नहीं कर सके।

ऐसी उच्च तपश्चर्य्या करनेसे एक दिन शाक्य मुनि मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़े। उनमें चलने फिरने की शक्ति न रही। उनके शरीर का रक्त उड़ गया। वे निश्चेष्ट की

भाँति मूर्च्छित दशामें पड़े हुए थे। शाक्यमुनि की ऐसी स्थिति देखकर एक गड़रियेके छोकरे को, जो उधर की तरफ से बकरियों को चराने ले जा रहा था, दया आयी। उस समय सूर्य्यका ताप शाक्यमुनि के मुँह पर बराबर पड़ रहा था। यह देखकर उस गड़रिये के छोकरे ने वृक्ष की डालियाँ बाँधकर उनके मुँहपर छाया कर दी और बकरीके स्तनों में से उस पवित्र मुखमें उसने दूधकी धार चलाई। इस दूधके मुख में जानेसे, शाक्य मुनि को कुछ चैतन्य प्राप्त हुआ। उन्होंने उस गड़रियेके लड़के से उसके ही लोटेमें थोड़ा दूध माँगा।

तब उस छोकरेने कहा,—"हे देव! मैं अपने लोटेमें आपको दूध नहीं दे सकता; क्योंकि आप जानते हो, कि मैं शूद्र हूँ। मेरे स्पर्शसे आप अपवित्र हो जायँगे।" इसपर शाक्य मुनिने उस भोले-भाले गड़रियेके छोकरेसे दयापूर्ण वाणीसे कहा,—"दया और तंगी सब जीवों को एक बनाती है। रक्तमें कोई ज़ात नहीं, क्योंकि रक्त तो सब मनुष्यों में एक ही रङ्गका होता है। उसी तरह आँसुओंमें भी जाति नहीं, क्योंकि सब मनुष्योंको आँखोंमें खारापन होता है। मनुष्य कपाल में तिलक और गलेमें यज्ञोपवीत लेकर नहीं जन्मता। जो अच्छा काम करते हैं वे द्विज हैं और जो ख़राब काम करते हैं वे शूद्र हैं; अतएव तू अपने लोटेमें मुझे दूध दे। तब मेरी खोज पूरी हो जायगी, तब तुझे लाभ होगा।"

यह शब्द सुन कर उस गड़रिये के लड़के का हृदय इतना प्रफुल्लित हुआ कि, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तुरन्त ही उसने लोटेमें दूध निकालकर महात्मा शाक्य मुनिको दे दिया और वहाँ से चलता बना।

दूसरे दिन पासके शहरमें एक बड़ा उत्सव होनेवाला था। उसके सम्बन्धमें कितनी ही नारियाँ उस मार्गपर होकर यों कहती हुई जा रही थीं,—"सितारके तार यदि बराबर खींचे जाते हैं, तब ही नाचने का काम ठीक तरहसे होता है। हमारे लिये सितार के तार हदसे बाहर भी न खींचे जाने चाहियें और न मन्दता से ; तब ही हम मनुष्यके हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं। क्योंकि यदि तार हदसे बाहर खींचा जावे, तो उसके टूटने का भय रहेगा। यदि मन्दतासे खींचा जायगा, तो वह ढीला पड़ जायगा और गायन बन्द हो जायगा। अतएव तारको न ज़ियादा और न कम खींचना चाहिये।" यह शब्द वे स्त्रियाँ आनन्दपूर्व्वक कहती हुई जा रही थीं। वृक्षके नीचे बैठे हुए शाक्य मुनिके कानमें ये शब्द पड़े। वे एकाएक यों बोल उठे,—"अहा! बहुत बार अपढ़ मनुष्य भी ज्ञानियोंको बोध देते हैं। मैंने भी इस शरीर रूपी तारको हदसे बाहर खींच लिया है। इससे उसमें से सङ्गीत नहीं निकलता। इतना ही नहीं, पर उसके टूट जानेतक का भय है। मेरा शरीर-बल क्षीण होगया है। जो यह टूट जायगा, तो अनेक प्राणियोंकी आशाका आधार भी छिन्न-भिन्न हो जायगा; अतएव

अब शरीर को हदसे बाहर तपश्चर्यामें न लगाकर, मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिये। शरीर उपयोगी साधन है, अतएव इसे मार डालना नहीं चाहिये ; पर अंकुश में रखना चाहिये।"

ऐसा विचारकर शाक्य मुनि अपने आसनसे उठे। पास ही की निरञ्जन नदीमें स्नान किया और उससे बाहर निकलनेकी चेष्टा करने लगे ; पर नदी में गिर पड़े। बड़ी मिहनत से पास उगे हुए वृक्षकी डाली पकड़ कर, वे बाहर निकले और एक वट वृक्षके नीचे आसन लगाकर ध्यानारूढ़ होगये।

उस समय एक धनिक और धार्मिक ग्वाल उस नदी के पासके एक गाँवमें रहता था। उसके एक सुन्दर दयालु-स्वभाव एवं उदार हृदय वाली एक स्त्री थी। उसका नाम सुजाता था। वह अपने दयालु स्वभाव और उदारता के कारण बड़ी लोकप्रिय होगयी थी। उसके कोई सन्तान न थी, अतएव उसने वनके अधिष्ठाता देव को यह मिन्नत मानी थी,—"यदि मुझे पुत्र-प्राप्ति हुई, तो मैं चैत्रकी पूर्णिमा के दिन खीर खाँड़ का भोजन बड़ के नीचे पधराऊँगी।" सौभाग्यवश उसकी आकांक्षा पूरी होगयी। आज तीन मास का पुत्र उसकी गोदमें खेल रहा है। इस पुत्र-जन्म से उसे इतना आनन्द हुआ कि, उसने हृष्टपुष्ट शरीरवाली एक हज़ार गायें पसन्द कीं। उनका दूध उसने पाँच सौ गायोंको

पिलाया, फिर इन पाँच सौ गायोंका दूध ढाई सौ गायोंको पिलाया। ऐसा करते करते जब छः गायें रह गईं, तब उनका दूध निकाल कर उसकी खीर बनाई। इस खीरमें उसने अनेक सुगन्धित पदार्थ डाले। उसने अपनी दासीको बड़के नीचे झाड़ू देनेके लिये भेजा। वह दासी दौड़ी दौड़ी वापस आई और कहने लगी,—"आश्चर्य! आश्चर्य! वन-देवता खुद ही आकर बड़के नीचे बैठे हैं! वे आसन लगाये हुए हैं! उनके मुखमण्डल पर एक तरह का अलौकिक तेज छा रहा है! उनकी आँखें देवों के समान हैं। अहा! देवोंसे मिलना कितने ऊँचे नसीब की बात है!"

यह सुन सुजाता एकदम खड़ी हो गई और बट वृक्ष की ओर रवाना हुई। जहाँ शाक्य मुनि पद्मासन लगाकर बैठे थे वहाँ आ पहुँची और उनके भिक्षापात्रमें हाथीदाँतके समान सफेद उज्ज्वल खीर डाली एवं ऊँचे दर्जे का इत्र मुनिके शरीरपर छिड़का। शाक्य मुनिने चुपचाप उस खीर का भोजन किया। उस पौष्टिक भोजनके प्रताप से छः वर्षके तपस्वी में नये बलका सञ्चार हुआ। उनके शरीर में नयी स्फूर्ति आई। तापसे तपे हुए पक्षीको झरनेका ठण्डा जल मिल जानेसे जैसा आनन्द होता है, वैसा आनन्द शाक्यकुमार के मुखपर झलकने लगा। बोधि (केवल ज्ञान) प्राप्त करने के योग्य उनकी शारीरिक स्थिति होगई। शाक्य मुनिके मुख-मण्डलपर आनन्द और तेज देखकर सुजाता विशेष भक्ति-

भाव प्रदर्शित करने लगी और उसने धीमे स्वरसे पूछा,—"क्या देवश्री को मेरी मिन्नत पहुँच गई?"

शाक्य मुनिने बड़े प्रेमसे अपना हाथ उस बच्चेके सिरपर फेरा और यह अशीस दी,—"तू चिरकाल सुखी हो और इस जीवन का बोझ सुखपूर्व्वक उठा। मैं देव नहीं, पर तेरा भाई हूँ। तैने मेरी मदद की है; मैं एक भटकता हुआ योगी हूँ। गत छः वर्षों से वह प्रकाश ढूँढ रहा हूँ, जिससे जगत् का दुःख मिटे—अन्धकार से वह बाहर निकल आवे। मुझे विश्वास है कि, वह मुझे ज़रूर मिलेगा। थोड़े समय से उस प्रकाश की कुछ कुछ झलक मुझे दिखाई देने लगी थी; पर मेरा शरीर निर्बल हो गया था। सौभाग्यवश, मुझे तेरा यह सात्विक भोजन प्राप्त होगया; इससे मेरे शरीर में नये बलका सञ्चार हुआ। तुझे इसके एवज़में बड़ा लाभ होगा।"

"हे प्रभो! आप वह प्रकाश प्राप्त करो," ऐसी प्रार्थना, करके सुजाता चली गई।

जब इस घटनाको शाक्यमुनिके साथी पाँच भिक्षुकोंने सुना, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि शाक्य मुनिका धर्मोत्साह मन्द होगया है—उन्होंने व्रत भङ्ग कर दिया हैं; क्योंकि वे उग्र तपश्चर्या नहीं कर सके। शाक्य मुनिने सोचा कि केवल उपवास करनेसे साध्य विन्दुके समीप नहीं पहुँच सकते; पर उलटा इससे शरीर कमज़ोर होता है और जिसका शरीर और



सुजाताने पूछा—"क्या देवश्रीको मेरी मिन्नत पहुँच गई?" शाक्य मुनि ने कहा—"तू चिरसुखी हो।"

मन कमज़ोर होता है। वह ध्यानकी पराकाष्ठा तक किस तरह पहुँच सकता है। इस विचार से उन्होंने उग्र तपश्चर्या करना छोड़ दिया और शरीर की इस सीमामें रक्षा करने लगे, जो गुलामी एवं शुश्रूषा न गिनी जावे। अब उन्होंने आत्म-निरीक्षण और ध्यानका आश्रय लिया।

वहाँसे उठकर शाक्यमुनि ने घास बिछाकर, बोधि वृक्षके नीचे योगासन बनाया और उसपर पद्मासन लगाकर बैठ गये और यह निश्चय कर लिया:—

"इहासने शुष्यतु मे शरीरं,
त्वगस्थिमांसं प्रलययं यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां,
नैवासनात् काय इतश्च लिष्यते॥"

इस आसनमें मेरा शरीर सूख जावे अथवा चमड़ी हड्डियाँ और मांस नाश हो जावे; तोभी जब तक दुर्लभ परमज्ञान मुझे प्राप्त न होगा, तब तक यह आसन ज़रा भी न डिगेगा।

इस समय उस वृक्षपर विविध पक्षीगण मधुर कलरव कर रहे थे। सब देवी देवता एक स्वरसे यह प्रार्थना कर रहे थे,—"हे प्रभो! हे मित्र! हे जगदुद्धारक! क्रोध और अभिमान पर विजय प्राप्त करनेवाले और काम, शंका तथा भय मिटानेवाले गुरो! आप अब बोधि वृक्षकी ओर पधारिये। अखिल दुःखी जगत् आज आपको आशीर्वाद दे रहा है। हमारे लिये आप अपना अन्तिम प्रयत्न आरम्भ कीजिये। हे राजन्! हे

जितेन्द्रिय महापुरुष! समय समीप है। बहुत वर्षोंसे जिस रात्रिकी हम प्रतीक्षा कर रहे थे, वह आज की रात्रि है।"

रात हुई और शाक्य मुनि, जो थोड़े ही समयमें बोधिज्ञान प्राप्त करनेवाले थे, बोधि वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गये। आज अखिल ब्रह्माण्डमें आनन्द छा रहा है; केवल मृत्युदेव शोकाकुल है। वह विचारता है,—"यह शाक्य मुनि थोड़े ही समयमें बुद्ध होंगे—बोधिज्ञान प्राप्त करेंगे और उस ज्ञानके द्वारा सारे विश्वको मेरे पञ्जेसे मुक्त करनेका भगीरथ प्रयत्न आरम्भ करेंगे। उनका यह प्रयत्न मेरी सत्ताको नाश करने वाला है। यदि वे सत्यकी खोजमें सफल होंगे, तो मेरी सब शक्ति नाश कर सकेंगे। यदि यह प्रयास वे केवल अपने ही लिये करते, तो मुझे विशेष चिन्ता करनेका कारण नहीं था; पर वे मुझे जड़ मूलसे उखाड़ फेंकनेके लिये सत्यका बोध देना चाहते हैं। मैं भी आज इनका पराजय करता हूँ। हे सैनिको! हे मेरे योद्धाओ! हे सेवको! आज तुम अपने पूर्ण आवेशमें तय्यार हो जाओ। आज हमें एक महारिपुसे युद्ध करना है। वह रिपु महावीर है; अतएव आज जितना तुममें बल है, शक्ति है, उसको पूर्ण रीतिसे काममें लाओ।

अब माररराज अपनी सहस्र कन्या और असंख्य सैन्य साथ लेकर वहाँ आता है, जहाँ योगिराज सिद्धार्थ ध्यानस्थित हो रहे हैं। योगिराज सिद्धार्थका और माररराजका घमासान



मारराज अपनी असंख्य सैन्यको साथ लेकर वहाँ आता है, जहाँ योगिराज सिद्धार्थ समाधि लगाये विराजमान हैं। पृष्ठ ८०

युद्ध होता है और उसमें सिद्धार्थकी विजय होती है। इस युद्ध का सुत्तनिपातके "प्रधान सुतमें" बड़ा ही मनोरञ्जन वर्णन दे रखा है। उसमें मार-विजयके विषयमें स्वतः बुद्ध भगवान् कहते हैं:—

तंमं पधान पहितत्तं, नदिं नेरंजनं पति ॥
वियरक्कम्म सायन्त योगक्खेमस्स पत्तिया ॥ १ ॥
न मुचि करणं वाचं, भासमानो उपागमि ॥
किसो त्वमसि दुब्बण्णो, सन्तिके मरणं तव ॥ २ ॥
सहस्स भागो मरणस्स, एकं सो तव जीवितं ॥
जीवं भो जीवितं सेय्यो जीवं पुञ्ञानि काहासि ॥ ३ ॥
चर तो चत्थे ब्रह्मचरियं अग्गिहुतं च जूहतो ॥
चहूतं चीयते पुञ्ञं किं पधानेन काहसि ॥ ४ ॥

अर्थः—(१) मैं निरंजन नदीके तीर पर निर्वाण-प्राप्तिके लिये बड़े उत्साहसे ध्यान कर रहा था। मेरा सब चित्त निर्वाणकी ओर लगा हुआ था।

(२) (ऐसी दशामें) मार मेरे पास आया और सकरुण वाणीसे मुझसे कहने लगा, तू कृश होगया है, तेरे अङ्गकी कान्ति फीकी पड़ गयी है, मृत्यु तेरे नज़दीक है।

(३) सहस्रांशमें तू मरेगा। एक ही अंश तेरा जीवन रहा है। हे (गौतम) जीवित रह जगके लिये, तो तू पुण्य क्रत कर सकेगा।

(४) (गृहस्थधर्मके विहीत) कर्मोंका आचरण करके

अग्निहोत्र रखकर होम करनेसे पुण्य सम्पादन किया जा सकता है, तब निर्वाण प्राप्त करके क्या करना है ?

मारने बोधिसत्त्वको ऐसा उपदेश दिया, तब बोधिसत्त्व यों कहने लगे:—

अणुमत्तेनवि पुञ्ञेन अत्थो मह्यं न विज्जति ॥
ये सं च अत्थो पुञ्ञानं ते, मारो वत्तुमरहंति ॥ १ ॥
अत्थिसद्धा ततो विरियं, पञ्ञाय मम विज्जति ॥
एवं मं पहितत्तंपि किं जीवित मनु पुच्छसि ॥ २ ॥

(अर्थ):—(१) इस तरहके (अलौकिक) पुण्य अणुमात्र भी मुझे नहीं चाहियें। जिसे ऐसे पुण्य की आवश्यकता मालूम पड़ती है, मार उन्हें उपदेश कर।

(२) मुझमें श्रद्धा है, उत्साह है और प्रज्ञा भी है। मेरा चित्त स्थिर है। इतना होते हुए भी मुझे तू मृत्युका भय क्यों दिखाता है ?

कामाते पठमा सेना दुतिया अरति वुच्चति ॥
ततिया खुप्पिपासाते चतुत्थी तण्हा पवुच्चति ॥ १ ॥
पंचमी थनिमिद्धं ते छट्ठा भीरुप वुच्चति ॥
सत्तमी विचिकिच्छा ते मक्खो थंभोते अट्ठमो ॥ २ ॥
लाभो सिलोको सक्कारो मिच्छा लद्धो च ये यसो ॥
यो चत्ताने समुक्कंसे परेच अवजानति ॥ ३ ॥
एसा न मुचिते सेना कण्हस्साभिप्पहारणी ॥
न तं असुरो जिनाति जेत्वा च लभते सुखं ॥ ४ ॥

अर्थ:—(१-२).(हे मार) इन्द्रियोंको सुखी करनेवाले विलासके पदार्थ तेरी पहली सेना हैं, अरति यह दूसरी सेना है, तीसरी भूख, प्यास, चौथी विषय-वासना, पाँचवाँ आलस्य, छठा भय, सातवाँ कुशङ्का और आठवाँ गर्व यह तेरी सेना हैं।

(३) (इनके सिवा) लाभ, सत्कार, पूजा ये तेरी नवीं सेना है। खोटे मार्गसे प्राप्त की हुई कीर्त्ति तेरी दसवीं सेना है। इसी कीर्त्तिके योगसे मनुष्य आत्मप्रशंसा और परनिन्दा करता रहता है।

(४) हे कालेशाह न मुचि (मार), साधु सन्तोंपर प्रहार करनेवाली यह तेरी सेना है। इसे डरपोक मनुष्य नहीं जीत सकता, परन्तु जो शूर है, वह इसे जीत सकता है और वही सुख पाता है।

यं ते तं नष्य सहानि सेमं लोको सदेवको ॥ १ ॥
तंते पञ्ञाय गच्छामि आमं पत्तं वं अम्हना ॥ २ ॥

अर्थ:—तेरी इस सेनाके सामने देव और मनुष्य खड़े भी नहीं हो सकते, पर जिस तरह पत्थरसे कच्ची मिट्टीका भाँड़ा फोड़ दिया जाता है, उसी तरह प्रज्ञा से मैं उसका पराभव करता हूँ।

कहना होगा, हमारे चरित्रनायक महात्मा शाक्यमुनिने मार राज का खूब अच्छी तरह पराजय किया। उसकी सेना का नाश कर डाला।

अब हम यहाँ यह समझा देना ठीक समझते हैं कि, यह

मारराज कौन है ? क्या सचमुच मनुष्यकी सेना महात्मा शाक्य-मुनिसे लड़ने आयी थी ? नहीं । यह एक रूपक है । मार—मनकी सद्वासनाको नाश करनेवाला और चित्तको संसार को अनेक पाशोंमें फँसाने वाला कारण है । एक ओर तो धन, मान, सत्ता, ऐश्वर्य्य, ऐहिक प्रेम और विलासयुक्त वस्तुएँ सिद्धार्थ के मनको आकर्षण करनेका प्रयत्न कर रही थीं और दूसरी ओर शाश्वत् सुख प्राप्त करनेका—जगतका दुःख दूर करनेका—जरा, मृत्यु, व्याधिकी दिव्य औषधि ढूँढ़नेका—निश्चय उसका मन सहसा अपनी ओर आकर्षित कर रहा था । अथवा यों कहिये कि, यह युद्ध कुवासनासे सद्वासना का था और इसमें दूसरीकी विजय हुई ।

रात्रिका प्रथम पहर बीत गया । दुर्गुण रूपी दुष्ट निशाचर हार मानकर अपने-अपने स्थानको चले गये । पृथ्वी शान्त हुई । अब वे सांसारिक दुःखोंके कारणका विचार करने लगे । बाह्य और अन्तर्जगत्में होनेवाली क्रियाके कार्य्य कारण भाव का भी उन्होंने गम्भीरतापूर्व्वक विचार किया । अब उन्हें मालूम हुआ कि, बाह्य जगत्में वस्तुकी उत्पत्ति, स्थिति व नाश होता है । अन्तर्जगत तथा आध्यात्मिक जगत् में भी कुछ मानसिक वृत्तियाँ मंगलकारक और कुछ अमंगलकारक हैं और अविद्याके वश होकर ये दुःख का कारण बनती हैं । दुःखोंकी यह कारण परम्परा बड़ी है । बौद्ध तत्त्वज्ञानकी भाषामें यों कह सकते हैं कि, अविद्या से

संस्कार, उससे विज्ञान, उससे नामरूप व उससे क्रमशः षड़ायतन, अर्थात् स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरामरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास आदि की उत्पत्ति होती है। अविद्या यानी अज्ञान, इसी अज्ञान के कारण प्रत्येक जन अपना-अपना संसार निर्माण करता है। घट, पट, मनुष्य, वृक्ष, लता आदि किसी विषय का ज्ञान भी अज्ञान है। यह अज्ञान अनादि है। इस अज्ञान का हमारे अन्तःकरण पर जो परिणाम होता है, उसका नाम संस्कार है। आज तक हमने जो जो पदार्थ देखे हैं, चाहें अभी वे हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूपसे न हों, पर उनकी आकृति व प्रकृति हमारे अन्तर्यामर्मे संस्कार रूपसे रहती है। इसी संस्कारसे विज्ञान की उत्पत्ति होती है। विज्ञान के कोई छः तो कोई पाँच प्रकार मानते हैं। वे प्रकार ये हैः—दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्वाद व स्पर्श। इनके सिवा कितनों हीके मत से मन भी एक विज्ञान है। यदि संस्कार न होते, तो दर्शन श्रवणादि ज्ञान नहीं होता। इस ज्ञानका रूप रसादि पंच विषय व चक्षु कर्णादि छः इन्द्रियोंसे दृढ़ सम्बन्ध है। विषयोंका इन्द्रियोंसे जो सम्बन्ध है, उसे स्पर्श कहते हैं। यह स्पर्श सुख, दुःख व अदुःखासुख इस त्रिविध संवेदना का कारण है। संवेदनासे तृष्णाकी उत्पत्ति होती है और तृष्णासे उपादान व कर्म उत्पन्न होते हैं। शारीरिक, वाचिक व मानसिक इन त्रिविध कर्मों से

धर्माधर्म की उत्पत्ति होती है और धर्माधर्मका फल भोगने के लिये जीवको जन्म धारण करना पड़ता है। जन्मके साथ-साथ जरा, मरण, शोक, परिवेदना, दुःख, दौर्मनस्य लगे हुए हैं। इस सब कारण परम्परासे अविद्या या अज्ञान ही दुःख का मूल कारण ठहरता है, अतएव उसका नाश करनेसे दुःख का नाश होता है। इस तरहका निश्चय होते ही, सिद्धार्थको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ—उनके मनके द्वार विकसित कमलकी तरह खुल गये। वे बुद्ध होगये। जगदुद्धारक महापुरुष विजयी हुए, सर्वज्ञ हुए, त्रिकालज्ञानी हुए। यह शुभ दिन वैशाख शुक्ल पूर्णिमाका था। बुद्धत्वकी प्राप्ति होने पर महात्मा बुद्ध देवके मुँह से ये दिव्य वचन निकले।

"अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसम् ॥
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खो जाति पुनप्पुनम् ॥
गहकारक दिट्ठोसि पून गेहं न कहासि ॥
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंकितम् ॥
विसंखार गतं चितं तण्हानं खय मज्झगं ॥"

जिस समय शाक्यमुनि 'बुद्ध' हुए, उस समयका वर्णन करते हुए अर्हत् अश्वघोष लिखता है,—"आज अखिल विश्व शान्त और प्रकाशमान् हो रहा था। सब देव, नागराज और अन्य दिव्य शक्तिधारक आकाशमें दिव्य दुँदुभी बजा रहे थे एवं पुष्पवृष्टि कर रहे थे। प्राणी परस्परका विरोध भूलकर शान्ति-सुखका अनुभव कर रहे थे। उस समय भय और त्रास अदृश्य

होगये थे। किसीमें द्वेषका विचार नहीं रहा था। दुःख और दरिद्रता मिट गये थे। ज्ञानका सूर्य्य विकसित होने लगा था। देवतागण आनन्द-समुद्रमें मग्न हो रहे थे। कसाइयोंने अपना दुष्कृत्य छोड़ दिया। चोरोंने लूट मार करना बन्द कर दिया। क्रूरहृदय नम्र हुए और नम्र विशेष नम्र हुए। युद्धके लिये सज्जित राजागण युद्धका विचार त्यागकर शान्तिके विचारमें रमण करने लगे। बीमार मनुष्य हँसते-हँसते अपने बिछौनेसे उठे। मृत्युकी तय्यारी करनेवाले मनुष्य भी इस शुभ प्रातःकालको देखकर परमानन्दित हुए। देव कहने लगे,—"काम फतह हो गया! फतह हो गया!"

बुद्ध भगवान् बोधिवृक्षके नीचे अटल रीतिसे सात दिन तक बराबर ध्यानाग्रस्त दशामें बैठे रहे। अब उनका मन परम शान्त है—किसी तरह की आशा-तृष्णा उनमें नहीं है।



नवाँ अध्याय।

धर्म—प्रचार।

(धर्मचक्र प्रवर्तन।)


ब दयासागर बुद्ध भगवान् अखिल विश्वकी ओर दृष्टि डालते हैं। सारा विश्व दुःखके महासागर में डूबा हुआ दीख पड़ता है। ऐसी दशामें क्या महात्मा बुद्धदेवकी असीम दया बिना स्फुरित हुए रह सकती है? क्या जगत्के निष्कारण बन्धु बुद्ध भगवान् को जगत्का अज्ञानान्धकार दूर करके, उसे ज्ञान-प्रकाश दिये बिना कल पड़ सकती है? उनके हृदयमें अखिल दुःखोंका संहार करनेवाली, धर्म-प्रचार करनेकी भावनाने सुदृढ़ आसन जमा लिया। वे विचारने लगे कि लोग प्रायश्चित्त, बलिदान, क्रिया-काण्ड, मन्त्र-तन्त्रमें बड़ी बुरी तरह फँसे हुए हैं! क्या ऐसी दशामें वे आत्मसंयम और भूतदया पर स्थित धर्मको स्वीकार करेंगे? क्या वे इस धर्मके माहात्म्यको समझेंगे? अन्तमें

बुद्ध भगवान् संसारके दुःखोंका विचार करके धर्मोपदेश देनेका निश्चय करते हैं।

सबसे पहले उन्होंने चाहा कि, अपने प्राचीन गुरु आराड़-कालाम को नये धर्ममें दीक्षित करें, पर आराड़कालाम इस समय परलोकवासी हो चुका था। वे उद्रक रामपुत्र को नये धर्मका उपदेश देनेके लिये जाना चाहते थे, किन्तु वह भी इस लोकसे विदा हो चुका था। वे अपने पाँच सह-पाठियोंको नये धर्मका पवित्र सन्देशा सुनानेके लिये काशीके उत्तरको ओर बसे हुए मृगदावकी तरफ़ रवाना हुए। काशी की तरफ़ जाते हुए उन्हें उपक नामका एक दिगम्बर जैन साधु मिला। बुद्ध भगवान् की अपूर्व कान्ति और अलौकिक तेज देखकर वह आश्चर्य चकित हुआ और उनसे पूछने लगा,—"तुम्हारे गुरु कौन हैं? किसने तुम्हें दीक्षा दी है?"

बुद्ध भगवान्ने उत्तर दिया,—"मेरा कोई गुरु नहीं। मुझे शान्ति मिली है। धर्मका साम्राज्य स्थापित करनेके लिये, मैं काशीकी ओर जा रहा हूँ। जो पाप और मृत्युके अन्धकार में भ्रमते फिर रहे हैं, उनके लिये मैं जीवनका दीपक प्रकाशित करूँगा।"

उपकने पूछा,—"क्या आप सारे जगत् को जीतने वाले 'जिन' हो?"

बुद्ध भगवान्ने जवाब दिया,—"जिन्होंने आत्मा और मनो-विकारोंपर जय प्राप्त की है, वे ही जिन हैं। जो विकारों

को जीतते हैं और पापसे दूर रहते हैं, वे ही सच्चे जीतनेवाले हैं। मैंने 'अहंभाव' पर जय प्राप्त की है, सब पापोंका नाश किया है ; इस कारण से यदि तुम मुझे 'जिन' कहो तो हाँ, मैं 'जिन' ही हूँ।"

पीछे वे काशी गये। वहाँ मृगवनमें कौण्डायनके चार शिष्य तपश्चर्य्या कर रहे थे। जब इन्होंने महात्मा बुद्धको अपनी ओर आते हुए देखा, तब वे आपसमें यों कानाफूसी करने लगे "इस मनुष्यने व्रत भङ्ग किया है, अतएव गुरुके समान इसका आदर नहीं करना चाहिये—खड़े होकर इसका सम्मान नहीं करना चाहिये।" इस तरहका विचार कर, वे अपने-अपने आसन पर बैठ गये। अब बुद्ध भगवान वहाँ आते हैं। उनकी दिव्य मुद्रा देखकर वे प्रतिज्ञाको तोड़कर खड़े हो जाते हैं—उनकीं वन्दना करते हैं और हर तरह गुरु जैसा उनका सम्मान करने लगते हैं। पर भगवान् बुद्धको वे गौतमके नामसे पुकारते हैं ; तब भगवान कहते हैं,—"मुझे अपने ख़ानगी नामसे मत पुकारो ; जो 'अर्हत्' होगये हैं,उन्हें ख़ानगी नामसे पुकारना बड़ी असभ्यता है। लोग मेरा सम्मान करें या न करें, इस बातसे मैं बिल्कुल उदासीन हूँ—इसकी मुझे कुछ भी परवा नहीं; पर जो मनुष्य सब जीवोंको समभाव और समदृष्टिसे देखता है—जो विश्वके उद्धारका मार्ग दिखानेवाला है, उसका पितासे भी अधिक सम्मान करना चाहिये।" ऐसा कहकर बुद्ध भगवान् उन पाँचों शिष्योंको औरभी आत्मकल्याणकारी उप-

देश देने लगे। पर इन शिष्योंने इसपर कुछ भी ध्यान न दिया। वे कहने लगे कि प्रथम वे (बुद्ध) तपश्चर्य्या करते थे, पर पीछेसे उन्होंने तपश्चर्य्या करना छोड़ दिया; तो फिर मन,वचन और शरीर पर संयम रक्खे बिना वे किस तरह बुद्ध हो गये? बुद्ध भगवान्‌ने इन शिष्योंकी शङ्का दूर करनेके लिये बड़ा लम्बा-चौड़ा उत्तर दिया। यह जवाब ही बुद्ध भगवान् का बुद्धत्व प्राप्त करनेके पीछे दिया हुआ प्रथम उपदेश है। वे बड़ी शान्त मधुर वाणीसे इस तरह उपदेश देने लगे,—"हे सत्य-शोधको! इस विश्वमें दो मार्ग हैं। कितनेक केवल तपश्चर्य्या करके शरीरको सुखा डालते हैं; अथवा य कहिये कि शरीरको मार डालते हैं। इसके विपरीत कितने ही खान-पान इन्द्रिय-जनित सुखमें निमग्न रहते हैं। ये दोनों मार्ग सद्‌ज्ञानके अभावको सूचित करते हैं और इन मार्गों से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। शरीरसे जर्जरित हुआ भक्त शरीरको विशेष कष्ट देता है। इससे उसका मस्तिष्क भी निर्बल हो जाता है। उसके विचार भ्रमित हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि, वह सांसारिक ज्ञान भी ठीक तरह नहीं प्राप्त कर सकता; तो फिर इन्द्रियोंके काबूमें करने की बात तो दूर रही। जो मनुष्य जलके दीपकसे अन्धकार दूर करना चाहता है, वह कभी सफलीभूत नहीं हो सकता; उसी तरह जर्जरित शरीरसे ज्ञानदीपक प्रकाश करनेकी इच्छा रखनेवाला कभी सफल नहीं हो सकता। उसका अज्ञान नाश नहीं हो सकता। ज्ञान

प्राप्त करनेके लिये केवल तपश्चर्य्या ही साधन नहीं है। इसके साथ-साथ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि, इन्द्रिय-जनित विषय-सुखमें तल्लीन रहना, आत्माके लिये महा अनिष्टकर है। ज्ञानके मार्गमें यह एक बड़ी दीवार है। जब विषयी मनुष्य सूत्र और शास्त्रको भी नहीं समझ सकते हैं, तब दुर्जय तृष्णा का नाश वे कैसे कर सकते हैं? जैसे अजीर्ण वाला मनुष्य ज़ियादा भोजन करनेसे अपने रोगको और ज़ियादा बढ़ाता रहता है, वैसे ही विषयोपभोगसे विषयका नाश करनेवाले मनुष्य विषयके अधिकाधिक शिकार बनते रहकर दुःखी होते हैं। इन दोनों एकदेशीय मार्गों को त्यागकर मध्यम मार्गको मैंने स्वीकार किया है। इससे सब दुःखोंका अन्त होकर; परम शान्ति प्राप्त होती है। इससे अज्ञान नाश होता है और सूर्य्यसे भी अधिक प्रकाशमान् ज्ञान स्फुरित हो निकलता है। जन्म-मरणके चक्र से मुक्त होनेका अष्टविधि मार्ग मैंने ढूँढ़ निकाला है। सत्श्रद्धा, सत्विचार, सत्वचन, सद्वर्तन, गुज़रानके सत् साधन, सत् उद्यम, सत्स्मृति और सतसमाधि ये आठ प्रकारके धर्म हैं। जो इन मार्गों को अङ्गीकार करते हैं, वें सदाके लिये दुःख-जालसे छूट जाते हैं। तृष्णा का नाश करनेके लिये इन मार्गों जैसा कोई उत्तम मार्ग नहीं है। जो चार महान् सत्य जगतके लिये जानने योग्य हैं, वे ये हैं:—दुःख है, दुःखका कारण है; दुःखका नाश हो सकता है और दुःखके नाश करनेके साधन भी हैं। जरा, व्याधि और मृत्यु

दुःख रूप हैं। जीवन-तृष्णा, इन्द्रियजन्य तृष्णा दुःखके कारण हैं। इस तृष्णाका नाश करने ही से दुःखका नाश होता है। उपरोक्त अष्टविध मार्ग होसे तृष्णाका नाश होता है। इन चार उत्कृष्ट सत्योंका ज्ञान गुरुके उपदेश तथा शास्त्र श्रवणसे नहीं हुआ है; पर निज अनुभव द्वारा हुआ है। यह धर्मोपदेश सुनकर कौण्डायन के ज्ञान-चक्षु खुल गये। सत्यके उसे दर्शन हुए—उसके सब सन्देह नष्ट होगये। वह बुद्ध भगवान्‌का प्रथम शिष्य हुआ। जब कौण्डायन के अन्य चार साथियोंने उसे नवीन धर्ममें दीक्षित हुआ देखा—उसके मुख-मण्डल पर दयाका अलौकिक प्रकाश चमकता हुआ देखा; तब वे भी (भद्र, महानाम, अश्वजीत और वाष्प) बुद्ध भगवान्‌के शिष्य हुए। ये पाँच शिष्य पीछेसे बड़े ही प्रतापी निकले। इस समय काशीके एक सद्‌गृहस्थ का लड़का, संसारसे विरक्त होकर, रातके समय घरसे निकल गया था। रास्तेमें चलते चलते वह कह रहा था—"शोक! शोक!! इस संसारमें दुःख परम्परा कितनी बड़ी है!" यह बात जब पास ही कहीं बैठे हुए बुद्ध भगवान् ने सुनी, तब वे यों बोल उठे "दुःख क्या? यहाँ आ, यहाँ विश्रान्तिकी जगह है। यहाँ दुःखमुक्त होकर निर्वाण पानेका मार्ग है।" तब वह महात्मा बुद्धके पास गया और उनका परम शान्तिदायक उपदेश सुन कर उसने परम शान्ति लाभ की। जब यह लड़का घरसे निकला था, तब आभूषण पहने हुए था। वे अब भी शरीर पर

ज्योंके त्यों थे ; पर उसका मन सचमुच तृष्णाके फन्देसे छूटगया था। पहले भवके पुण्योदयसे थोड़े ही समयमें वह 'अर्हत'-दशाको प्राप्त होगया। उसने बुद्धधर्म को स्वीकार किया। पर अबतक उसके शरीर पर ज़ेवर मौजूद थे, जिससे वह मन-ही-मन शरमाया। बुद्ध भगवान् उसके मनका आशय समझ गये और उसे यों उपदेश देने लगे,—"मनुष्य-शरीरपर आभूषणोंको रखते हुए भी, समभाव वृत्ति रखकर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके इस उत्कृष्ट मार्गकी ओर लग सकते हैं। बाह्य दिखावेका इसपर कुछ भी असर नहीं होता। यदि मनुष्य श्रमणका वेश धारण करे, जङ्गलोंमें रहे ; पर सांसारिक पदार्थोंकी इच्छा करे, तो उसे संसारी ही समझना चाहिये। इसके विपरीत, वेश संसारी होते हुए भी, यदि मन उच्च विचारोंमें रमण करता रहे, 'मैं' पन दूर कियाजाय, तो ऐसी दशामें संसारी और श्रमणको एकही सा समझना चाहिये। जो हृदय विषय-वासनाओंसे पिचपिच है, तो बाह्य परिवर्तनसे क्या लाभ ? जो फौजी चाँद पहनते हैं वे मानो यह सूचित करते हैं कि उन्होंने किसी युद्धमें विजय प्राप्त की है ; वैसे ही जो श्रमणका वेश धारण करते हैं,वे उस वेशसे यह सूचित करते हैं कि उन्होंने दुःख रूपी शत्रुपर विजय प्राप्त की है। यह कहकर बुद्ध भगवान्ने उसे दीक्षा लेनेके लिये कहा। तुरन्त ही उसने आभूषणादि उतार डाले। अब वह भीतरसे जैसा श्रमण था, वैसा ही बाहरसे भी होगया।

इस लड़केके युवावस्थामें ५४ मित्र ऐसे थे, जिनका स्वभाव बड़ा ही नीच था। पर जब इन्होंने अपने मित्रको श्रमणके वेशमें देखा, तब ये अपने सारे दुर्गुणोंको त्याग कर धीरे धीरे बुद्धके शिष्य होगये और ज्ञान प्राप्त करने लगे। जब वर्षा ऋतु पूरी होगई और जुदे जुदे स्थानोंमें भ्रमण कर धर्मोपदेश करनेका समय आया; तब बुद्ध भगवान्‌ने इन साठ शिष्योंको बुलाकर यों उपदेश देना शुरू किया,—"हे भिक्षुको! तुमने जन्म-मरण चक्रसे मुक्त होनेके मार्गको जान लिया है, निर्वाण के बहते हुए झरनेमें तुमने पैर रखा है; अब तुम संसारके कल्याणके लिये, विश्वकी दयाके खातिर, देवता और मनुष्योंके लाभके लिये देश-देशमें विचरण करो। भिक्षुको! जो सिद्धान्त आदिमें प्रकाशित है, मध्यमें प्रकाशित है और अन्तमें प्रकाशित है उसका उपदेश करो। परम पवित्र और सम्पूर्ण शुद्ध जीवन व्यतीत करना,—लोगोंको सिखाओ। ऐसे बहुतसे लोग हैं जिनकी आँखोंपर एक पतलासा अन्धकारका परदा पड़ा हुआ है। धर्मोपदेश न सुननेके कारण वे उस ज्ञानसे प्रायः विहीन रह जाते हैं, जो आत्माका बड़ा रक्षक एवं तारक है। अतएव मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि, तुम दयाभावसे देश-देशमें विचरण करके, शुद्ध ज्ञानके प्रकाशसे उपरोक्त मनुष्योंके अन्धकारमय परदों पर दिव्य प्रकाश डालना। उनके हृदयमें रहे हुए अज्ञानका नाश करके, वहाँ ज्ञानका सौभाग्य-सूर्य प्रकाशित करना।

मैं भी उरुविल्व जङ्गलके पास बसे हुए सेनानी गाँवमें जाता हूँ ।"

बुद्ध भगवान्‌के इन दिव्य शब्दोंसे उत्तेजित होकर, ये ६० शिष्य जुदे जुदे देशोंमें धर्मका पवित्र सन्देशा सुनानेके लिये रवाना हो गये । भगवान् बुद्ध भी उरुविल्व जङ्गलकी ओर विहार कर गये । वहाँ काश्यप नामका ऋषि अपने ५०० शिष्योंके साथ रहता था । वह अग्निहोत्र और क्रियाकाण्ड हीमें मग्न रहता था । वेदोंका वह पारङ्गत विद्वान् था ; इस कारण देश-विदेशमें उसकी सुख्याति हो रही थी । बुद्ध भगवान् उसे धर्मोपदेश देनेके लिये, उसके निवास-स्थान की ओर आये । उसके आश्रमके पास एक भयङ्कर नाग रहता था । बुद्ध भगवान्‌ने उक्त ऋषिसे रातको विश्राम करनेके लिये कुछ जगह माँगी । इसपर काश्यपने कहा,—"रातको तुम्हारे विश्राम करनेके योग्य मेरे नज़दीक कोई स्थान नहीं है, केवल अग्निकुण्डके पास थोड़ीसी जगह है, जो शीतल और रहने योग्य है ; पर वहाँ एक भयङ्कर सर्प रहता है। वह मनुष्योंको अपनी आँखोंसे निकलनेवाली ज्वाला हीसे मार डालता है ।" बुद्धभगवान्‌ने उत्तर दिया,—"विश्राम करनेके लिये मुझे वही स्थान दे दो । मैं वहीं पड़ रहूँगा । काश्यप ऋषिने भगवान् बुद्धको वहाँ न रहनेके लिये बहुत समझाया, पर उन्होंने एक न मानी ; तब लाचार होकर काश्यप ऋषिने भगवान् बुद्धको वहाँ रहनेकी आज्ञा दे दी ।

भगवान् बुद्ध उक्त अग्निकुण्डके पास ध्यान लगाकर बैठते हैं। अब वह महाविकराल नाग भगवान्‌के पास आता है और उनपर अपना सारा बल आज़माता है—अपनी दृष्टिसे विष निकालता है—मुँहसे अग्नि-ज्वाला निकालता है; पर भगवान् बुद्ध पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ता। वे अपनी शान्त मुद्राको धारण किये हुए ध्यानावस्थामें ज्यों के त्यों बैठे रहते हैं। अन्तमें नाग उस परम शान्त मुद्राको शिर नमाकर वन्दना करता है।

जब काश्यप ऋषि अग्निकुण्डके पास आया,तब उसने देखा कि भगवान् बुद्धदेव ध्यानकी उच्चावस्थामें स्थित हैं—उनके मुख-मण्डल पर दिव्य शान्ति झलक रही है, उनके नेत्र उस अलौकिक दिव्य ज्योतिको देखनेके लिये आत्माके उच्च प्रदेश की ओर झुके हुए हैं—वह महाभयङ्कर साँप निरुपद्रवी होकर, अपना क्रूर स्वभाव छोड़कर, उस शान्त—परम शान्त मुद्राकी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। यह देखकर उसके आश्चर्यका पार नहीं रहा—उसके तअज्जुबका ठिकाना न रहा—उसके विस्मय की मात्रा १०५ डिग्रीसे भी अधिक बढ़ गई। वह बुद्ध भगवान् की अतुल शक्तिकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगा; पर "मैं सर्वज्ञ हूँ" उसका यह अहंभाव इस समय भी दूर न हुआ। बुद्ध भगवान् कुछ समय तक वहाँ रहे और अपने ज्ञान-बल द्वारा उसके विचारोंमें परिवर्त्तन करने लगे। कहना होगा कि, बुद्ध भगवान् ने उसके विचारोंमें बड़ा परिवर्त्तन कर दिया।

वह भगवान् बुद्धकी महत्ता मुक्तकण्ठसे स्वीकार करके उनका शिष्य हो गया। उसके साथ-साथ उसके पाँच सौ शिष्य भी बुद्ध भगवान्की शरण हुए। इसके पीछे काश्यपने यज्ञकी सब सामग्री पासही बहनेवाली नदीमें फेंक दी। जब यह दृश्य काश्यप ऋषिके दो भाई नादी काश्यप और गया काश्यप ने देखा, तो वे बड़े आश्चर्यचकित हुए। अपने बड़े भाईको श्रमणके वेशमें देखकर, वे विचार करने लगे कि, बड़े भाई कहीं भूल तो नहीं कर रहे हैं। क्या हम लोग भी उनका मार्ग स्वीकार कर लें ? जब वे इस बातका सोच-विचार कर रहे थे, उस समय बुद्ध भगवान् गयाके पासके गन्धहस्ती पर्वत पर बैठे हुए थे। पास ही की एक टेकरी पर अग्नि-ज्वाला भभकती हुई देखकर, भगवान् बुद्ध उन तीनों भाइयों को यों उपदेश देने लगे:—

"मनुष्य जब तक अविद्या के प्रदेशमें भटकता रहता है, तब तक हृदयमें उत्पन्न होनेवाली विकार रूपी अग्निसे इस वनकी तरह जलता रहता है। पाँच इन्द्रियों एवं हृदय द्वारा बाह्य वस्तुएँ मनुष्य पर असर करती हैं। आँख बाह्य वस्तु देखती है, उससे सुख-दुःख उपजता है। हृदयमें काम, क्रोध, लोभ और मोहकी अग्नि हमेशा जलती रहती है। उस अग्नि को बाह्य वस्तुओंके संसर्गरूप वेदन द्वारा ईंधन मिलता रहता है। आँख की तरह दूसरी इन्द्रियोंको भी जब बाह्य विषयोंका संसर्ग होता है, तब भी ऐसा ही परिणाम

होता है। पर हे काश्यप! जो लोग आत्मसंयम के धर्मको, जिसका प्रवेश-द्वार आत्म-शुद्धि है और जिसका लक्ष्य विशुद्ध प्रेम है, पा लेते हैं वे ज्ञानी हो जाते हैं और दुःखके मूल तृष्णाका नाश कर देते हैं। वे अपने प्राप्त किये हुए ज्ञानसे जल्दी या देरसे निर्वाण प्राप्त कर सकेंगे—जन्म-मरणके चक्र से छूट जावेंगे। उन्हें ज्ञातिबन्धन, क्रियाकाण्ड तथा यज्ञादिके नियमोंके पालनेकी ज़रूरत नहीं रहती, क्योंकि ज्ञानीजन इन बन्धनोंसे छूटे हुए रहते हैं।"

यह उपदेश सुनकर काश्यप भाइयों और उनके १००० शिष्योंको अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। उन्होंने बौद्धमत स्वीकार किया। वे श्रमण होगये। इसके बाद भगवान् बुद्ध ने इन्हें इन्द्रिय-शुद्धि का मार्ग बताया। इसके पश्चात् भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों के साथ राजगृह की ओर रवाना हुए, क्योंकि राजा बिम्बसारको पहले वे बचन दे चुके थे कि, "जब मेरी शोध पूरी हो जायगी तब मैं तुमसे आकर अवश्य मिलूँगा।" राजगृहमें आकर भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों सहित यष्टि नामके वनमें उतरे।

जब राजा बिम्बसार को यह बात मालुम हुई, तब वह अपने सब अमलदार और राज-कुटुम्बके साथ भगवान् बुद्ध के दर्शनोंके लिये आया।

भगवान् बुद्ध को दूरही से देखकर राजा बिम्बसार अपने रथसे उतर पड़ा और हर्षसे पुलकित होता हुआ, बड़ी उमंग

से, भगवान् बुद्ध की ओर जाने लगा। काश्यप भाइयों को श्रमण के वेशमें देखकर राजा मन-ही-मन विचार करने लगा कि, जिसने इन तीन काश्यप भाइयों को अपना शिष्य बना लिया है, उस महापुरुष में कितनी शक्ति होगी? राजाके मनोगत भावोंको जानकर, भगवान् बुद्ध काश्यप से पूछने लगे, "तुमने अग्नि-पूजा छोड़ दी, इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ?" इसपर श्रमण काश्यपने खड़े होकर विनीत भावसे यों उत्तर दिया—"हे गुरो! अग्निहोत्र करनेसे मैं जन्म-मरण और दुःखों के चक्र में पड़ा हुआ था। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार अग्निहोत्र आदि किये और उनसे इच्छाओं का नाश करना चाहा, पर फल उल्टा हुआ अर्थात् इच्छाएँ नाश होनेके बदले दिन-दिन बढ़ती ही गईं। अग्निमें बलिदान देनेसे जन्मसे छुटकारा नहीं मिला और न जन्मके साथ लगनेवाले दुःखों ही से मुक्ति मिली; अतएव मैंने बलिदान करना छोड़ दिया है। शरीरको कष्ट देनेमें मैं एक ही गिना जाता था; पर इससे मुझे परम ज्ञान नहीं मिला। इससे मैंने उस व्यर्थ मार्ग को छोड़ कर निर्वाण—शान्ति—का मार्ग ढूँढ़ निकाला है। जन्म, जरा, रोग और मृत्युसे मुक्ति प्रदान करनेवाला मार्ग अब मुझे मिल गया है।"

इसके पीछे श्रमण काश्यप योग-बलसे प्राप्त की हुई कुछ सिद्धियाँ बताता है। फिर बुद्ध भगवान् अहन्ता को त्यागने का उपदेश देते हैं और चार महान सत्यको बड़ी सरलता से

समझाते हैं । इस व्याख्यानका राजा बिम्बसार पर इतना असर होता है कि, वह अपने को बुद्ध-धर्मानुयायी ज़ाहिर करता है। यह सुनकर कि महान् काश्यप बुद्ध भगवान् के शिष्य हो गये हैं और राजा बिम्बसार ने भी बुद्धधर्म स्वीकार कर लिया है, लोगों के झुण्ड के झुण्ड महात्मा बुद्ध के दर्शन करने एवं नवीन धर्म्म का पवित्र सन्देशा सुनने के लिये आने लगे।

राजाने भगवान् बुद्ध से विनयपूर्वक प्रार्थना की,—"हे भगवन्! यष्टिवन नगर से बहुत दूर है ; अतएव आप दया करके, पासके वेणुवन नामक वनमें पधार जाइये।"

बुद्ध भगवान्‌ने राजा की प्रार्थना पर ध्यान देकर, वेणु वन में रहना स्वीकार कर लिया।

इस बीचमें सारीपुत्र, मौद्गलायन और मैत्रेयाणी-पुत्र नामके तीन प्रसिद्ध शिष्य उनसे मिले। एक दिन अश्वजित भिक्षा के लिये नगर में फिर रहे थे। ये अत्यन्त रूपवान थे। जब सारीपुत्रने इन्हें देखा; तब इनसे पूछा,—"तुम्हारे गुरु कौन हैं? तुम कौनसा धर्म्म पालते हो?" इसपर अश्वजित ने जवाब दिया,—"भगवान बुद्ध मेरे गुरु हैं। थोड़े ही समय से मैं इस नये धर्ममें दाखिल हुआ हूँ। ज्ञानका सूर्य थोड़े ही समयसे उगा है। अतएव महान् गुरुके उपदेश का मैं ठीक तरह विवेचन करनेमें नितान्त असमर्थ हूँ ; पर मेरी अल्प मति के अनुसार कुछ कहता हूँ,—"जिन जिन वस्तुओं का अस्तित्व है, उन सबके कारण हैं। जन्म-मरण के भी कारण

हैं और वे कारण चार उमदा सत्य और अष्टविध मार्ग से दूर हो सकते हैं।" आगे चलकर अश्वजित ने अष्टविध मार्ग और उनके कारणोंका विवेचन किया। सारीपुत्र पर इस उपदेश का अच्छा असर पड़ा। बुद्धधर्म्म पर उसकी श्रद्धा हो गई। वह अपने मित्र मौद्गलायन के पास गया। सारीपुत्र की तरह मौद्गलायन भी बड़ा पण्डित था। उन दोनों के अनेक शिष्य थे। ये दोनों मिलकर भगवान् बुद्ध के पास गये और उनका परम शान्तिप्रद उपदेश सुनकर बुद्ध, संघ और धर्म्मकी "शरण" स्वीकार कर "श्रमण" हुए।

शिवशङ्कर नामके एक ब्राह्मण-पुत्रने, जिसे यज्ञ-क्रिया और बलिदान से सख़्त नफरत हो गई थी, महात्मा बुद्ध का परम कल्याणकारी उपदेश सुन कर बौद्ध-दीक्षा लेली। बुद्ध के बारह नामी शिष्योंमें इसकी गणना हुई। दीक्षा लेने के बाद उसने अपना नाम बदल कर मैत्रेयाणी-पुत्र रख लिया। बुद्ध भगवान् का उपदेश सुनकर, उसने अपने जीवनका सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन किया। जब बुद्ध भगवान् उसकी सारी हक़ीक़त सुन चुके, तब वे उससे पूछने लगे,—"क्या तुझे इस बात का विश्वास है कि, तेरे अपने हृदय में द्वेष का अंश तक नहीं रहा? तेरे चचा ने तेरे पुत्र का ख़ून किया है, इसके लिये क्या तू उसे हृदयपूर्वक क्षमा प्रदान कर सकता है? क्या तेरा सब जीवोंके प्रति दया-भाव है? क्या तू अपने नुक़सान पहुँचानेवालों के प्रति प्रेमभाव—दया-भाव प्रकट कर सकता

है?" इसपर उसने जवाब दिया—"हे नाथ! सचमुच यही बात है। मेरे चचा की स्त्रीने मुझे नुकसान पहुँचाया है—मैंने उसे क्षमा कर दिया है। मैं वह बात भूल गया हूँ। मैं उसे अपनी सारी सम्पत्ति दे सकता हूँ, क्योंकि अब मुझे उसकी ज़रूरत नहीं। मेरे मनमें अभी केवल एक ही भावना है, और वह भावना जब तक सिद्ध न होगी तब तक मैं प्रयत्न करता ही रहूँगा—चाहे हज़ारों वर्ष क्यों न लग जायँ। हे जगत्प्रभो! वह भावना यह है, कि मैं भी आप ही की तरह जगत्कल्याणके लिये अपने आपको अर्पण कर दूँ। हे भगवन्! आपने मुझे जिस तरह दुःख से मुक्त किया है—जैसी शान्ति प्रदान की है—वैसे ही मैं भी संसारको दुःखमुक्त करने की—एवं शान्ति प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। हे प्रभो! इसके लिये मैं जन्म-जन्मान्तर में भी निरन्तर प्रयत्न करता रहूँगा।"

बुद्ध भगवान् ने प्रेमपूर्वक उससे कहा,—"जैसा तू कहता है, वैसा ही होगा। बुद्ध की हैसियत से मैं तेरी प्रतिज्ञा को स्वीकार करता हूँ। तेरी यह प्रतिज्ञा कभी निष्फल न होगी। तुझे इसमें बड़ी सफलता प्राप्त होगी। बुद्ध भगवान् ने उसके सिर पर हाथ रखा और वह बड़े गद्गद हृदय से भगवान् के चरणों में गिर पड़ा। उसने भगवान्‌के पास से दीक्षा ली। उसका नाम मैत्रेयाणी-पुत्र रखा गया।

जब भगवान् बुद्धदेव वेणुवनमें रहते थे। तब महाकाश्यप

नामका एक ब्राह्मण-संन्यासी उनका शिष्य हुआ था। सत्य की खोज करनेके लिये सब सांसारिक मूल्यवान वस्तुओं का उसने त्याग कर दिया था। बुद्ध भगवान्‌के निर्वाण के बाद, इसी ने राजा अजातशत्रु के आश्रय में, दूसरे कई भिक्षुकों की सहायता से, बुद्धधर्म्म के तमाम सूत्र इकट्ठे किये थे।

हम सारीपुत्र और मौद्गलायनका विवेचन ऊपर कर चुके हैं। भगवान् बुद्धदेव ने इन्हें योग्य समझकर योग्य उपाधिसे विभूषित किया। इससे उनके दूसरे शिष्य नाराज़ हुए। जब यह ख़बर भगवान् बुद्धदेवको पहुँची, तब उन्होंने सब शिष्योंको इकट्ठा कर कहा,—"हे भिक्षुको! निर्वाणके जो मार्ग मैंने बताये हैं उन्हें याद रखना। यदि तुम दूसरी बातें भूल भी जाओ, तोभी यह बात मत भूलना कि—

सव्व पापस्स अकरणम्।
कुसलस्स उपसम्पदा
सचित परियो दपणम्
एतं बुद्धानुसासनम्॥

॥ धम्मपद १८३

"सब तरह के पाप नहीं करना और चित्तकी शुद्धि करना, यह बुद्ध-धर्म्म है। तुम ईर्ष्याके वश होकर क्यों धर्म को भूले जा रहे हो?" इस पवित्र उपदेश से शिष्यों के जलते हुए हृदय शान्त हुए। इसी समय भगवान् बुद्धदेव ने सभा करके व्यवस्था और पवित्रता के कुछ नियम बनाये। इन्हीं

नियमों को "प्रतिमोक्ष" कहते हैं और इसी प्रथम सभा को "श्रावक संनिपात" के नामसे पुकारते हैं।

इसी बीचमें राजा शुद्धोधन को सिद्धार्थ (भगवान् बुद्धदेव) के राजगृह में आने का समाचार मिला। उसने कहला भेजा—मैं चाहता हूँ कि, मरने के पहले अपने पुत्रका मुख देख लूँ।" यह समाचार पाकर भगवान् ने कपिलवस्तुको प्रस्थान किया। राजा मन्त्रियों सहित आपको लेनेके लिये आगे आया और निकट पहुँचने पर रथ से उतर उसने बुद्धदेवको प्रणाम किया। प्रेमसे राजा का चित्त विह्वल हो गया। चित्तमें आया कि एकबार कहूँ कि ऐ सिद्धार्थ! अपने पिताके पास आ और राज्यभार ग्रहण कर, परन्तु ऐसा कहने की हिम्मत न पड़ी। यह विचार कर कि सिद्धार्थ अब उसके साथ रहकर राज्य-कार्य नहीं करेगा, उसे अत्यन्त शोक हुआ।

बुद्धदेव ने राजा से कहा,—"मैं जानता हूँ कि पुत्रके कारण आपको अत्यन्त दुःख है; परन्तु जैसी प्रीति आप अपने बिछुड़े हुए लड़के पर रखते हैं, वैसी ही प्रीति प्राणिमात्र पर रखें, तो बहुत ही उत्तम हो। ऐसा करनेसे सिद्धार्थ के बदले आप बुद्धको प्राप्त करेंगे और आपके चित्त में निर्वाण की शान्तिका आविर्भाव होगा।" इन शब्दों को सुन कर राजाके चित्त का भाव बदल गया; उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसने कहा कि पहले मेरा चित्त शोकसे व्याकुल था। अब मुझे तुम्हारे वैराग्य का फल मिला। अच्छा

हुआ कि प्राणि-दया-वश हो तुमने राज्य छोड़ दिया और धर्मके लिये आत्म-समर्पण किया। तुमने सच्चे मार्ग का अनुसन्धान कर लिया है। अब तुम संसारको धर्म-शिक्षा दो। इसके बाद राजा भवन को गया और बुद्धदेवने एक बाग़ में आसन लगाया।

नियमानुसार दूसरे दिन बुद्ध भिक्षा माँगने निकले। यह सुन राजा उनके पास आया और कहने लगा—"तुम क्यों राज-कुलको कलङ्कित करते हो? मेरे कुल में कभी किसी ने भिक्षा नहीं माँगी।" बुद्धदेव ने उत्तर दिया,—"यह सत्य है कि, आप राज-परिवार के हैं; परन्तु मैं तो बुद्ध-परिवार का हूँ और मेरे परिवार में सभी ने भिक्षा माँगी है। हे राजन! इस व्यर्थवादको छोड़िये और मेरे धर्म-भाण्डार से उपदेश रूपी चुने हुए रत्नों को ग्रहण कीजिये; क्योंकि यदि पुत्र को कोष मिले तो यह उसका धर्म है कि, उसमें के चुने हुए रत्न पिता को भेंट करे।"

राजा बुद्ध को महल में ले गया। वहाँ राज-परिवार के सभी पुरुषों ने आ आकर भगवान् को प्रणाम् किया। केवल यशोधरा नहीं आई। बुलाने पर उसने कहला भेजा कि, यदि मैं इस योग्य हूँ, तो वे स्वयं ही मेरे पास आवेंगे। जब बुद्ध ने यह सुना, तो वे उठ खड़े हुए और राजकुमारीके कमरे की ओर गये। द्वार पर पहुँचकर देखा कि, यशोधराके बाल कटे हुए थे, शरीर अत्यन्त कृश होगया था और शरीर पर केवल फटे-

पुराने वस्त्र थे ; ज्योंही उस देवी ने भगवान् को देखा, उसके हृदयमें प्रीति-स्रोत उमड़ उठा और यह भूलकर कि यह सिद्धार्थ नहीं वरन् बुद्धदेव हैं उनके चरणोंपर गिर पड़ी एवं दाढ़ मार मारकर रोने लगी। थोड़ी देरमें उसे ध्यान आया कि राजा भी पास खड़े हैं ; इस लिये वह तुरन्त ही उठ खड़ी हुई और लज्जा तथा संकोच से सिर नीचा करके दूर जा बैठी। राजा ने कहा,—"इसका अपराध क्षन्तव्य है। घने प्रेमके कारणही इसकी सुध बुध जाती रही थी। पिछले सात वर्षों से यह तपस्विनी-वेष धारण किये हुए है। जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने बाल कटवा डाले, तब इसने भी वैसा ही किया ; सिद्धार्थ के सुगन्ध तथा आभूषणोंके व्यवहार छोड़नेका समाचार सुन, इसने भी उनका व्यवहार छोड़ दिया और जबसे इसे यह मालूम हुआ है कि, सिद्धार्थ मिट्टी के पात्र में केवल एक ही बार भोजन करते हैं तबसे यह भी वैसा ही करने लगी है।" बुद्धदेव ने यशोधरा को उपदेश दिया और लोगों से कहा कि, इसकी आत्मा बहुत ऊँची है और यह केवल इसके पूर्व जन्मों का तथा सुकृत का ही फल है कि, यह एक बुद्ध की स्त्री हुई। यद्यपि इसे शारीरिक कष्ट सहने पड़े हैं ; परन्तु इससे इसकी आत्मा की अतीव उन्नति होगी।"

कपिलवस्तुमें बुद्धदेवके अनेक शिष्य हुए, जिनमें आनन्द (प्रजापति का पुत्र और बुद्धका सौतेला भाई) और देवदत्त (सिद्धार्थ का साला) मुख्य थे। आनन्द बुद्धका अनन्य भक्त

हुआ और वह बुद्ध के निर्वाण लाभ पर्यन्त सदैव उनके साथ ही रहा।

एक दिन यशोधरा ने पुत्र राहुल को बुध के पास यह सिखलाकर भेजा कि, तू उनसे कहना कि मैं आप का पुत्र हूँ; अतएव आपको सम्पत्तिका अधिकारी हूँ। आप अपनी सम्पत्ति मुझे दीजिये। राहुल ने वैसा ही किया। बुद्धदेव ने कहा, "मेरे पास सोना, चाँदी नहीं है; किन्तु धार्मिक सम्पत्ति है, क्या तुम इसका भार सहने योग्य हो!" राहुलने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया,—"अवश्य" और उनके साथ हो लिया। बुद्धने उससे फिर पूछा कि क्या तुम संघमें सम्मिलित होकर भिक्षुकोंकी भाँति रहना चाहते हो? उसने उत्तर दिया "हाँ।" उसकी दृढ़ता देख बुद्धने उसे सङ्घ में सम्मिलित कर लिया।

राहुलके भिक्षुक होनेका समाचार सुन, राजाको अत्यन्त शोक हुआ और उसने बुद्धके पास जाकर कहा कि, मेरे पुत्र और भतीजे तो घर वार छोड़ ही चुके थे, अब तुमने राहुल को भी हमसे छीन लिया। हमारा हृदय अत्यन्त शोकातुर है और चित्तको धैर्य्य नहीं होता। राजाके वचन सुन बुद्धदेव ने आज्ञा दी कि, आजसे कोई भी बालक घरवालोंकी सम्मति लिये बिना संघमें सम्मिलित न किया जावे।

श्रावस्तीमें अनाथ पीड़िका नामक एक धनीने 'जीतवन' नामक बिहार बनवाया और बुद्धदेवको आमन्त्रित किया; अतएव कपिलवस्तु से चलकर आप श्रावस्ती गये। वहाँ

आप के अनेक शिष्य हुए; राजा प्रसेनजित ने भी उपदेश ग्रहण किया।

बुद्धदेव कठिन मार्ग की निस्सारता जान चुके थे; इसलिये वह मध्यम मार्गका अनुसरण करते थे। भिक्षुकोंको आज्ञा थी कि, वे कपड़े पहन सकते हैं; परन्तु नये कपड़े नहीं; अतएव भिक्षुक फटे-पुराने कपड़े पहिनते थे। इस का परिणाम यह हुआ कि, बहुत से भिक्षुक बीमार पड़ने लगे। एक बार स्वयं बुद्धदेव भी रोगाक्रान्त हुए। तबसे, जीवक वैद्य के प्रार्थना करनेपर, उन्होंने आज्ञा दे दी कि, भिक्षुक नवीन वस्त्र भी धारण कर सकते हैं।

बुद्धत्व लाभ करने के पञ्चम वर्ष राजा शुद्धोदन बीमार पड़े और उन्होंने चाहा कि, अन्तिम बार पुत्र का मुख देख लूँ। अतएव बुद्धदेव दूसरी बार फिर कपिलवस्तु गये और शुद्धोदनने उन्हीं के हाथोंमें सिर रखकर प्राण-त्याग किया!

जब बुद्धदेव कपिलवस्तु ही में थे, तभी एक दिन प्रजापति और यशोधरा कुछ अन्य स्त्रियों के साथ बुद्धदेव के निकट पहुँची और संघमें सम्मिलित होनेके लिये प्रार्थना की। यद्यपि पहले यशोधरा के अनेक बार प्रार्थना करने पर भी आप स्त्रियोंको संघमें सम्मिलित करने से इंकार कर चुके थे; परन्तु इस बार उनकी दृढ़ता और श्रद्धा देख बुद्ध देवने उनको संघ में सम्मिलित कर लिया। प्रजापति पहिली स्त्री थी जो भिक्षुकिनी हुई।

श्रावस्ती की एक विशाखा नामक स्त्री ने एक बार बुद्धदेव से यह प्रार्थना की,—"मैं चाहती हूँ कि, जीवन-भर, मैं संघको वर्षा ऋतुमें वस्त्र, आने-जाने वाले बीमार तथा उनके पास रहनेवाले भिक्षुओं को भोजन, संघको दूध-चाँवल और स्त्रियोंको साड़ी देती रहूँ।" उसकी दृढ़ भक्ति देख, बुद्धदेव ने यह स्वीकार किया।

राजा बिम्बसार के, जोकि राज्य छोड़ संन्यासी-जीवन व्यतीत करने लगा था, प्रार्थना करने पर बुद्धने आज्ञा दी कि, प्रत्येक मासकी अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को धार्मिक सभाएँ हुआ करें। प्रत्येक भिक्षुक को उचित है कि, इस अवसर पर वह अपने दुष्कर्मों को सबके सम्मुख प्रकाशित किया करे। इन सभाओं का नाम 'उपावस्थ' है।

यशोधरा के भाई देवदत्तने, जो बुद्धदेव का शिष्य होगया था, चाहा कि अपनी सम्प्रदाय अलग स्थापित करूँ, जिससे मैं भी बुद्ध के समान ही मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करूँ। राजा बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु उसका शिष्य हो गया और देवदत्तके आदेशानुसार उसने पिताको ज़हर देकर मार-डाला और स्वयं गद्दीपर बैठा। जब बुद्धदेव राजगृहमें पहुँचे तो देवदत्तने उनसे कहा कि, आप मेरे धर्मकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर लीजिये; परन्तु जब बुद्धदेवने ऐसा करनेसे इंकार किया, तो उसने राजा की सहायता से उन्हें मरवा डालना चाहा; परन्तु कृतकार्य नहीं हुआ। बुद्धदेव के कुछ दिन

निवास करनेपर, अजातशत्रुको उनका प्रभाव विदित हुआ और वह भी इनका अनुयायी होगया। धीरे धीरे देवदत्त के सब शिष्य बौद्ध होगये; परन्तु तब भी वह बुद्धका विरोध करने और अपना धर्म स्थापन करनेका उद्योग करता ही रहा। अन्तमें उसको अपने दुष्कर्मों पर शोक हुआ और मृत्यु निकट जान बुद्ध के समीप गया और उनकी प्रार्थना करते हुए देह त्याग की।

राजगृह में एक पुरुष ने एक लम्बे बाँस को गाड़ कर उसके ऊपर रत्नजटित चन्दन का एक कमण्डल रखा और कहा,—"जो भिक्षुक बिना सीढ़ी लगाये इसे उतार ले, वह इसे ले जा सकता है।" काश्यप नामक एक भिक्षुक ने हाथ बढ़ा कर उसे उतार लिया। जब बुद्धदेवको यह समाचार ज्ञात हुआ, तब वे काश्यप के पास गये। उससे कमण्डल ले उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले और आज्ञा दी कि, अबसे कोई भिक्षुक इस प्रकारके प्रकृति-विरुद्ध कार्य नहीं करे और न कभी ऐसे कार्य कर सकने की डींग हाँके।



दसवाँ अध्याय ।

भगवान् का निर्वाण काल ।

भगवान बुद्धदेवके मध्यम जीवन की घटनाओं का ठीक-ठीक पता नहीं चलता; पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि, वे इसी समय में, देश के भिन्न-भिन्न स्थानोंमें गये । हज़ारों स्त्री पुरुष उनके उपदेशामृत को पानकर बुद्ध धर्म तथा संघ के भक्त बने और अनेक राजाओंकी क्रोधाग्नि उनके उपदेश-जल से शान्त हुई, जिससे सहस्रों मनुष्य समर-क्षेत्रमें नाश होनेसे बच गये ।

मृत्यु के तीन मास पहले का वर्णन ग्रन्थोंमें सविस्तर लिखा है, जोकि अत्यन्त सूक्ष्म रूप से नीचे लिखा जाता है:—

"बुद्धदेव राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर निवास करते थे । उसी समय राजा अजातशत्रु ने वृजि जातिको ध्वंस करने का विचार किया और यह जाननेके लिये कि, मैं इसमें कृतकार्य्य हो सकूँगा या नहीं, उसने अपने मन्त्री को बुद्धके पास भेजा । बुद्धदेवने उसे सत्परामर्श और उपदेश दिया,

जिससे राजाने लड़ाई का विचार छोड़ दिया और सहस्रों मनुष्यों के प्राण बचगये।

राजगृहसे चलकर भगवान्‌ने आनन्द सहित अम्बल-स्थिक, नालन्दा, पाटलिपुत्र, कोटिग्राम और नादिका नामक स्थानोंमें धर्म-प्रचारार्थ भ्रमण किया। नादिका से आप वैशाली आये और आम्रपाली नामक एक वेश्या का आतिथ्य स्वीकार किया। वैशालीमें आपने भिक्षुकों से कहा कि, वर्षा-ऋतु भर तुम सब लोग अपनी अपनी सुविधा देख इसी स्थान के निकट ठहरना। मैं वेलूवा (विल्व ग्राम) में ठहरूँगा। शिष्यों ने वैसा ही किया। वेलुवामें वे एक कठिन रोगसे पीड़ित हुए, जिससे उनकी अत्यन्त शोकजनक दशा होगई। परन्तु यह सोचकर कि, भिक्षुकों को अन्तिम उपदेश दिये बिना शरीर त्याग करना अच्छा नहीं, भगवान् ने योग-शक्तिसे मृत्यु को हटा दिया और धीरे धीरे बिल्कुल चङ्गे होगये।

एक दिन बाहर निकल कर आप एक चट्टान पर बैठ गये। उनका क्षश शरीर देख आनन्दने अत्यन्त दुःख प्रकाशित किया; इसपर बुद्धदेवने उपदेश दिया—"आनन्द! तू क्यों शोक करता है तथागतसे अब क्या आशा रखता है? मैंने कोई बात छिपा नहीं रक्खी है और मेरी बाहरी-भीतरी सभी शिक्षाओंमें कुछ भी भेद नहीं। अब मेरा शरीर वृद्ध हुआ। समाधि के सिवाय प्रत्येक समयमें अब क्या प्रतीत होता है? अब मेरी सहायता न ढूँढ़ो; वरन् अपने ऊपर भरोसा करो।

प्रत्येक भाई को उचित है कि वह अपने आपको ऐसा बना ले कि, उसे शारीरिक दुःखोंसे कष्ट न हो। इसके उपरान्त बुद्धदेव की आज्ञा पाकर आनन्द ने सब भिक्षुकों को एकत्रित किया और भगवान् ने उन सबको उपदेश देकर कहा कि, तथागत का अन्तिम समय निकट है। संसार की प्रत्येक वस्तु वृद्ध होती और नष्ट होती है। उस वस्तु के पानेका उपाय करो, जो कि अमर है और मुक्तिके लिये यथाशक्ति प्रयत्नशील रहो।

वेलूवा से चलकर बुद्धदेव भाण्डग्राम, हस्तिग्राम, आम्र-ग्राम, जम्बु ग्राम और भोग नगर होते हुए पावा पहुँचे। वहाँ चन्दा कर्मकारके बाग़ में ठहरे। उसने बड़ी प्रसन्नता से आपकी बड़ी शुश्रूषा की और अपने घरपर बुलाकर भोजन कराया। भोजन करनेके बाद ही बुद्धदेव पर एक कठिन रोग का आक्रमण हुआ, परन्तु उसकी परवा न कर आप उसी नगर की ओर चले। मार्गमें श्रमित हो, एक स्थानपर बैठ गये। मल्लवंशी एक पुरुष उधर होकर निकला। भगवान् को बैठा देख वह उनके निकट गया और उपदेश ग्रहण किया तथा दो बहुमूल्य सुनहले वस्त्र लाकर भेंट किये। भगवान् ने कहा कि इनमेंसे एक मुझे और ऐक आनन्द को दो। बुद्धदेवकी आज्ञानुसार जब आनन्द भगवान् को वस्त्र पह-नाने लगा, तो उनके शरीरसे एक अद्भुत प्रभा आविर्भूत हुई और शरीरकी कान्ति के आगे कपड़ा फीका दीख

पड़ने लगा। आनन्द ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया,—"स्वामिन! आज आपके शरीर की कान्ति अलौकिक होगई है।" बुद्ध भगवान् ने कहा:—"हे आनन्द! दो रातों में बुद्धका शरीर विशेष प्रभायुक्त हो जाता है। एक बुद्धत्व लाभ करनेकी रात्रिको और दूसरे निर्वाण प्राप्त करने की रात्रि को। यह मेरा अन्तिम दिवस है। कहीं ऐसा न हो कि, मेरे बाद लोग चन्दाको दोष देवें कि, इसी के यहाँ भोजन कर बुद्ध बीमार पड़े। यदि ऐसा हो, तो तुम यह कहकर इस अपवादको दूर करना कि, जिस पुरुष के यहाँ बुद्धत्व लाभके बाद सबसे प्रथम व जिसके यहाँ निर्वाण-प्राप्ति के पहले बुद्ध भोजन करते हैं, वे दोनों ही महान पुण्यशाली होते हैं। मुझ से यह स्वयं बुद्ध ने कहा है।" उस स्थानसे उठकर बुद्धदेव हिरण्यवती नदीको पार कर कुशी नगरके निकट शाल वनमें पहुँचे और दो शाल वृक्षों के बीच बिस्तर बिछवा, उत्तरकी ओर मुख करके लेट रहे। अनन्तर आपने आनन्दसे कहा,—"हे आनन्द! चार स्थानोंको श्रद्धा सहित देखना उचित है:—(१) बुद्धका जन्म-स्थान (२) बुद्धत्व-लाभस्थान (३) धर्मचक्र प्रवर्तन और (४) निर्वाण-लाभस्थान।

बुद्धदेवके अन्तिम समयका समाचार सुन, स्त्री पुरुषोंकी भीड़ उनके दर्शनोंको आने लगी। आपने उन लोगोंकी ओर देखकर कहा,—"जिसप्रकार वैद्यको देखनेसे रोग नहीं

जाता वरन् औषधि-प्रयोगसे हो जाता है; उसी प्रकार बुद्धके दर्शनोंसे पाप नहीं जाते; पाप नष्ट होते हैं उसके उपदेशोंके अनुसार कार्य करनेसे। जो बुद्धकी ही आज्ञाओंको मानता है, वह सदैव उसके पास है; परन्तु उपदेशोंको न माननेवाला पास होते हुए भी दूर है।"

भगवान् बुद्धदेवका अवतार सांसारिक दुःखोंको दूर करनेके लिये हुआ था। वह महान आत्मा सांसारिक सुख अनुभव करनेके हेतु नहीं, वरन् दूसरोंके जीवनको सुखमय बनानेके हेतु अवतीर्ण हुई थी; तभी तो उस राजकुमारने राज-पाट छोड़ा, गेरुआ वस्त्र धारण कर घर घर भिक्षा माँगी; शारीरिक कष्ट सहते हुए भी वनमें भटक सच्चे मार्गकी खोज की। उपदेश देते हुए गाँव गाँवकी छान डाला और मरण-समयके दुःखोंकी परवा न कर, रुग्णावस्थामें भी, धर्म-प्रचारका क्रम जारी रखा। निर्वाण-समयके कुछ ही पहले सुभद्र नामक एक परिव्राजक बुद्धदेवके दर्शनोंके लिये आया; परन्तु आनन्दने यह कहकर उसे उनके पास जानेसे रोका कि, रोगके प्रकोपके कारण भगवान्की दशा इस समय अच्छी नहीं है। आपके जानेसे उन्हें कष्ट होगा। इन शब्दोंको बुद्धदेवने सुना और आनन्दको आज्ञा दी कि, उसे मेरे उपदेश ग्रहण करनेसे वञ्चित न करो! सुभद्र भगवान्के पास गया और उपदेश श्रवण कर शरणागत हुआ। सुभद्र ही बुद्धदेवका अन्तिम शिष्य था। सुभद्रको उपदेश देनेके बाद, आपने शिष्योंको बुलाकर कहा

"भिक्षुकगण! यदि मेरे प्रवर्तित धर्म में तुममेंसे किसीको भी किसी प्रकारकी शङ्का या मत-भेद हो, तो कहो ।" कुछ देर ठहरकर आनन्दने उत्तर दिया,—"हे भगवन! किसी भी विषयमें हमलोगों को कोई भी शंका नहीं है ।"

अनन्तर बुद्धदेव ने भिक्षुकगणोंको सम्बोधित कर कहा, "हे भिक्षुकगण! संयोगोत्पन्न पदार्थमात्र ही नाशशील हैं, केवल सत्य ही अमर है । सावधान होकर मुक्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करो, यही मेरा अन्तिम उपदेश है ।" ईस्वी सन से ४७७ वर्ष पूर्व, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को इस प्रकारका अन्तिम उपदेश दे, भगवान् ध्यानावस्थित हुए और क्रमसे चारों प्रकार के ध्यानोंमें विहार करते हुए रात्रिके शेष भागमें अच्युतानन्द मोक्ष पदमें सदाके लिये विलीन होगये ।

बुद्धदेवके निर्वाण लाभ करने पर, शिष्यगण पृथ्वीपर गिर पड़े और रोने पीटने लगे! अनिरुद्ध ने सबको समझाया और शेष रात्रि धर्म-चर्चामें बितायी । प्रातःकाल अनिरुद्धके आदेशानुसार आनन्द कुशी नगर गया और मल्ल लोगोंसे भगवान्के निर्वाण का समाचार कहा । उन्होंने अत्यन्त विलाप किया । पश्चात् भाँति भाँति के सुगन्धित पुष्प-हार और बाजे आदि लेकर शाल वनमें गये और पुष्प-वर्षा नाच-कूद एवम् गान आदिसे शवका सत्कार किया । इसके बाद बहुत ही धूम-धाम के साथ राजा महाराजाओं की भाँति बुद्धदेवके शव का दाह-संस्कार किया । दाह-कर्म समाप्त हो चुकने पर देव-पुत्र

उठा और उसने भिक्षुकों को सम्बोधित करके कहा,—“हे भाइयो! बुद्ध भगवान् का भौतिक शरीर अब संसारमें नहीं है; परन्तु सत्य—जिसका कि भगवान् ने उपदेश दिया है—अमर है; अब हम लोगोंको उचित है कि अपने स्वामी की भाँति दयायुक्त होकर संसारमें भ्रमण कर धर्म का प्रचार करें।”

भगवान्‌के निर्वाणका समाचार ज्ञात होनेपर अजातशत्रु कपिलवस्तु के शाक्य, मल्ल, कल्पके बुलय, रामग्रामके कोलिय, पावाके मल्ल और वेठ द्वीपके ब्राह्मण लोगोंने बुद्धदेवके धातु प्राप्त करनेके लिये कुशी नगरमें अपने अपने दूत भेजे। कुशी नगर के मल्ल लोगोंने यह कहकर धातु देनेसे इंकार किया, कि भगवान् ने हमारे ही ग्राममें निर्वाण प्राप्त किया है; अतएव हम उनके अस्थि अन्य स्थानोंमें न भेजेंगे; परन्तु द्रोण नामक ब्राह्मणने उनको समझाया और कहा,—“भगवान् सदैव शान्तिका उपदेश देते थे—अब उन्हीं की अस्थि लेकर झगड़ा करना उचित नहीं।” द्रोणने धातुको आठ भागोंमें विभक्त कर, उस के सात भाग सात दूतों को और एक भाग कुशी नगरके मल्ल गणों को दिया। इन आठ अस्थि-खण्डोंपर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें आठ शरीर-स्तूप निर्मित हुए। द्रोणने उस कुम्भपर जिसमें कि धातु रखे गये थे, एक स्तूप बनवाया और पिप्पल वनीय मौर्य गणोंने—जिनका दूत धातु विभाजित हो जाने पर आया था—चिता की भस्म ले जाकर

उसपर स्तूप-रचना कराई। इस भाँति आठ शरीर-स्तूप, एक कुम्ब स्तूप और एक भस्म स्तूप, ये सब दश शुद्ध स्तूप निर्म्मित हुए।



वैराग्य शतक

पर

चन्द सम्मतियाँ।

संस्कृतके धुरन्धर विद्वान वेद-व्याख्याता स्वर्गवासी पण्डितवर भीमसेनजीके सुयोग्य पुत्र, "ब्राह्मण-सर्वस्व" सम्पादक पं० ब्रह्मदेवजी मिश्र शास्त्री काव्यतीर्थ लिखते हैं—

महाराजा भर्तृहरि के तीनों शतक विशेषतः संस्कृत साहित्य सेवियों में और साधारणतः हिन्दी-प्रेमी पाठकों में खूब प्रसिद्धि पा चुके हैं। भर्तृहरिजी की रचना सरस सरल और हृदयग्राहिणी है उन्होंने जो कुछ कहा है वह खूब अनुभवपूर्वक कहा है; इसीलिये उनकी कविता का आदर है और उसमें बनावट नहीं मालूम पड़ती। उनके बनाये तीनों शतकों के हिन्दी अनुवाद अब तक अनेक स्थानों से निकल चुके हैं; पर इस अनुवाद ने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। ऐसा सचित्र अनुवाद निकालना तो दूर रहा, इस के होने की कल्पना भी किसीने न की होगी। श्लोकों के आधार पर जो चित्र इसमें छपे हैं, वे श्लोकोंके भावों को अच्छी तरह

व्यक्त करते हैं। फिर इस अनुवाद की भाषा इतनी सरल है कि, थोड़े पढ़े-लिखे भी वैराग्य जैसे कठिन और रूच विषय को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकते हैं। इसका क्रम इस प्रकार है :—आरम्भ में मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें हिन्दी कवितामें श्लोकानुवाद और अन्तमें अँगरेज़ी अनुवाद दिया गया है। बीच-बीच में तुलसी सतसई, सुन्दर विलास, कबीर की साखी आदि हिन्दी कविता-पुस्तकों के सिवाय उस्ताद ज़ौक़ महाकवि दाग़ और महाकवि ग़ालिबकी भी कवितायें इसमें उद्धृत की गई हैं। इस तरह पुस्तक को अच्छी और सर्वोपयोगी बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा गया है। पुस्तक-प्रारम्भ में वैराग्यशतक की उत्पत्ति का तथा महाराज भर्तृहरि के वैराग्य का कारणभूत वह उपाख्यान विस्तृत रूप से लिखा गया है। जिसके कारण महाराज को राज्य, रानी आदि से विरक्ति हो गई थी।

आश्विन कृष्ण ५ सं० १९७७ का पाटलिपुत्र लिखता है—

योगिराज भर्तृहरिका नाम कौन भारतवासी नहीं जानता? आपकी धनवितृष्णा, संसार-विरक्ति और राज-त्यागके लिये भारतमाता गर्वके साथ संसारके सामने खड़ी होती है। प्रस्तुत पुस्तकमें आपके रचित वैराग्य-विषयपर सौ संस्कृतके पद्यरत्न हैं। भर्तृहरिजी महाराजकी ये कवितायें बता रही हैं, कि आप एक पहुँचे हुए संसार-त्यागी ही नहीं

थे; पर आप संस्कृतके कवियोंमें अपना एक उच्च स्थान भी रखते हैं। आपकी इन संस्कृत-कविताओंके अबतक कई अनुवाद निकल चुके हैं; पर वैसे अनुवादोंका निकलना, नहीं निकलनेके बराबर है; क्योंकि उन अनुवादोंसे न तो कुछ भाव ही खुलता है और न भर्तृहरिकी चमत्कारपूर्ण कविताओंका चमत्कारिता ही मालूम होती है; पर हर्षकी बात है, कि प्रस्तुत अनुवादको प्रकाशित कर अनुवादक महाशय ने एक बड़े भारी अभावकी पूर्त्ति की है। पुस्तकमें १८ दर्शनीय चित्र हैं, जो प्रसंगानुसार सन्निवेशित किये गये हैं। भूमिकाके बाद महाराज भर्तृहरिका सचित्र जीवन-चरित्र दिया गया है, जो विषयी जनोंके लिये शिक्षाजनक है। मूल श्लोक, उसका सरल हिन्दीमें अर्थ, फिर भावार्थ, तब कवितावद्ध अनुवाद, फिर अँगरेजी अनुवाद और अन्तमें उसी श्लोकके भावको अन्य हिन्दी उर्दू कवितायें दे कर पुस्तकको सर्वाङ्गसुन्दर बनानेकी पूरी चेष्टा की गई है। लेखकने भर्तृहरिजीके संस्कृत श्लोकबद्ध भावोंको समझानेकी पूरी चेष्टा की है और इसमें सन्देह नहीं; कि उन्हें पूरी सफलता भी मिली है। सुनहली जिल्द नयनाभिराम और मज़बूत है। हम इस पुस्तकका समादर चाहते हैं।